Satya ka Avahan

सत्य का आवाहन

Invoking the Divine

Year 6 Issue 6 November–December 2017
Membership Postage: Rs. 100

Sannyasa Peeth, Munger, Bihar, India

Hari Om

Satya ka Avahan is a bilingual and bi-monthly magazine compiled, composed and published by the sannyasin disciples of Sri Swami Satyananda Saraswati for the benefit of all people who seek health, happiness and enlightenment. It contains the teachings of Sri Swami Sivananda, Sri Swami Satyananda and Swami Niranjanananda, along with the programs of Sannyasa Peeth.

Editor: Swami Yogamaya Saraswati

Assistant Editor: Swami Sivadhyanam Saraswati

Published by Sannyasa Peeth, c/o Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.

Printed at Thomson Press India (Ltd), Haryana

© Sannyasa Peeth 2017

Membership is held on a yearly basis. Late subscriptions include issues from January to December. Please send your requests for application and all correspondence to:

Sannyasa Peeth
Paduka Darshan
PO Ganga Darshan
Fort, Munger, 811201
Bihar, India

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request

---

Front cover and plates: Sri Swami Satyananda Saraswati

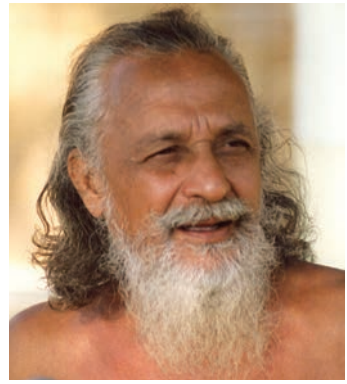

SATYAM SPEAKS – सत्यम् वाणी

The body is confined to a place, but the soul is omnipresent. You are here too, there too. We are everywhere. If this idea is established in the soul, then one can attain siddhis effortlessly. You will not need sadhana. However, if you see me only in the limited form of a human being, then I will not be able to do anything for you. How can I tell you who I am? This is something for you to figure out for yourself.

—Swami Satyananda Saraswati

शरीर तो एकदेशीय है, पर आत्मा सर्वव्यापक है। तुम यहाँ भी हो, वहाँ भी हो, हम सब जगह हैं। यदि यह बात आत्मा में बैठ जाये तो बैठे-बैठे सिद्धि मिल सकती है। साधना की दरकार नहीं रहेगी, और यदि हमें सीमित मानव मान लिया तो भई, सारी साधना तुम्हीं करो, हम कुछ नहीं कर सकेंगे तुम्हारे लिये। हम कैसे कहें कि हम कौन हैं, यह तो खुद के समझने की बात है।

—स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

Published and printed by Swami Shankarananda Saraswati on behalf of Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger – 811201, Bihar.
Printed at Thomson Press India (Ltd), 18/35 Milestone, Delhi Mathura Rd., Faridabad, Haryana.
Owned by Sannyasa Peeth **Editor**: Swami Yogamaya Saraswati

Satya ka Avahan
Invoking the Divine

सत्य का आवाहन

Year 6 Issue 6 • November–December 2017

न तु अहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्। कामये दुःखतप्तानां प्राणिनां आर्त्तिनाशनम्॥

"I do not desire a kingdom or heaven or even liberation. My only desire is to alleviate the misery and affliction of others."

—Rantideva

Contents

This issue of Avahan is dedicated to Sri Swami Satyananda's tirtha yatras and to Swami Niranjan and Swami Satsangi following in the footsteps of their guru.

आवाहन का यह विशेषांक श्री स्वामी सत्यानन्द जी की तीर्थयात्राओं, तथा उनके पदचिह्नों का अनुगमन करने वाले स्वामी निरंजनानन्द एवं स्वामी सत्यसंगानन्द को समर्पित है।

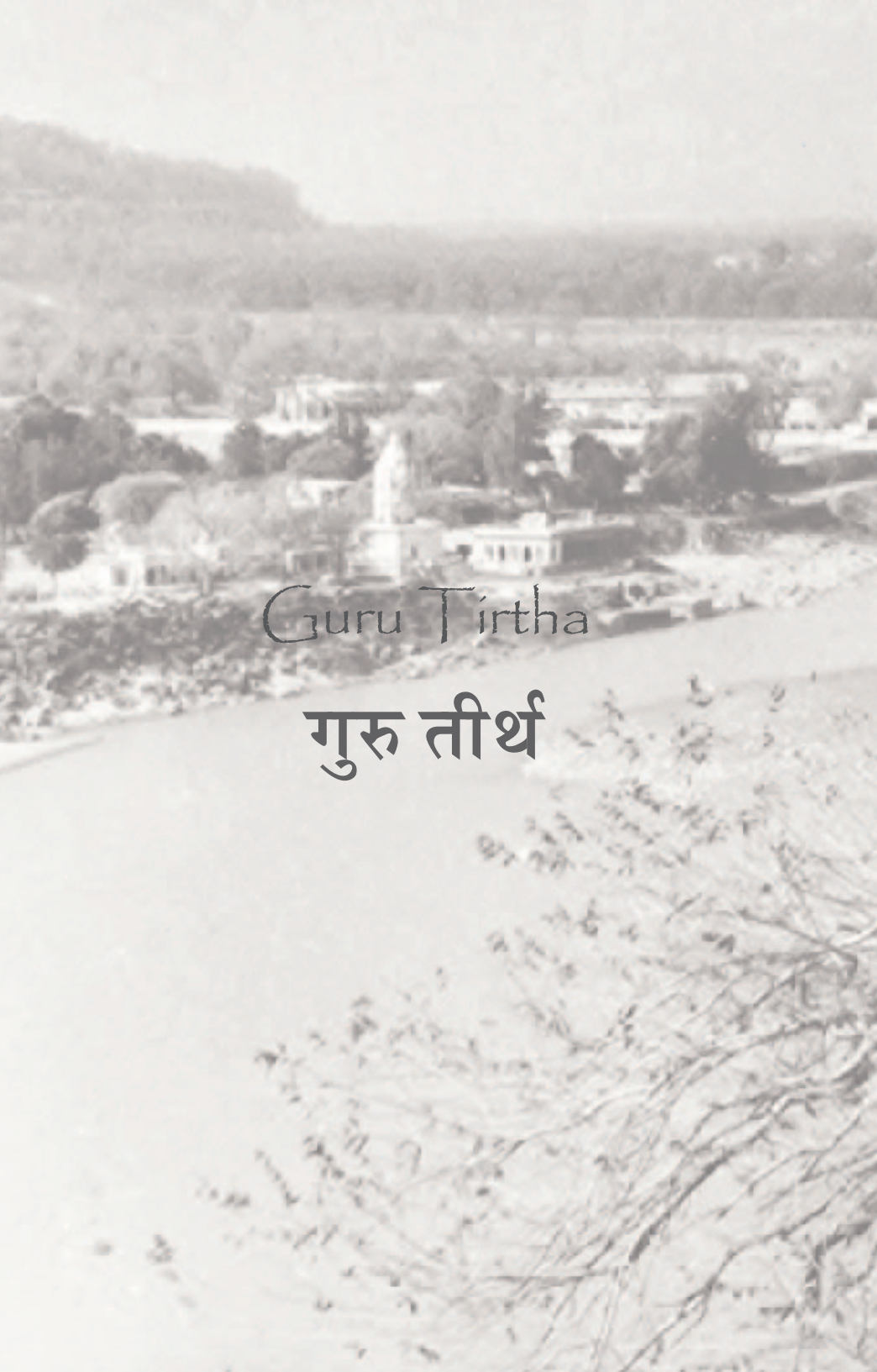

Guru Tirtha

गुरु तीर्थ

Rishikesh, 1943–1956

In 1942, at the age of nineteen, I left my home in search of a guru. First I went to Rajasthan and lived with a tantric guru for some time. He taught me different branches and aspects of tantra, theoretically and also practically. But I realized that it was not my destiny, so I left his place. After wandering for several months I arrived in Rishikesh in 1943.

At that time the ashram was not more than a few kutirs in the wilderness amidst scorpions, serpents and tormenting mosquitoes, but it was beautiful, on the banks of the pure Ganga.

When I arrived at Sivananda Ashram I went up the stairs and entered the bhajan hall, the place where akhanda kirtan had been going on since 1943. The vibration of the hall is still very clear in my mind. It was the most divine atmosphere that I had ever experienced in my life.

Then I was led to Swami Sivananda. He asked me where I came from and I told him. He asked what I wanted and I told him of my difficulty. I explained that I had been meditating since thirteen years of age. I had started my meditation when I was six years old. I was able to come to a point of shoonya but I was not able to go beyond that. He said only one thing: that I should stay in the ashram and serve the ashram, while purifying the mind and body.

So I started to live in the ashram and participated in almost every sphere of service. It was a time which cannot be compared with life in paradise. It is difficult to explain my experiences. I am talking about the totality of experience for a period of twelve years, not one day's experience, not a moment's experience, but the sum total of experience which cannot be compared with what one imagines even in one's wildest dreams.

Kabir Das said, "If you place the pleasure of swarga, paradise, and moksha, spiritual liberation, in one balance and the guru's presence in the other balance, there is no comparison

between the two." That is to say, to live in association with guru, to work for him and give all your love, dedication and devotion, and your idiosyncrasies also to him is such a wonderful experience that you can never get it even if you go into samadhi. That was my experience also.

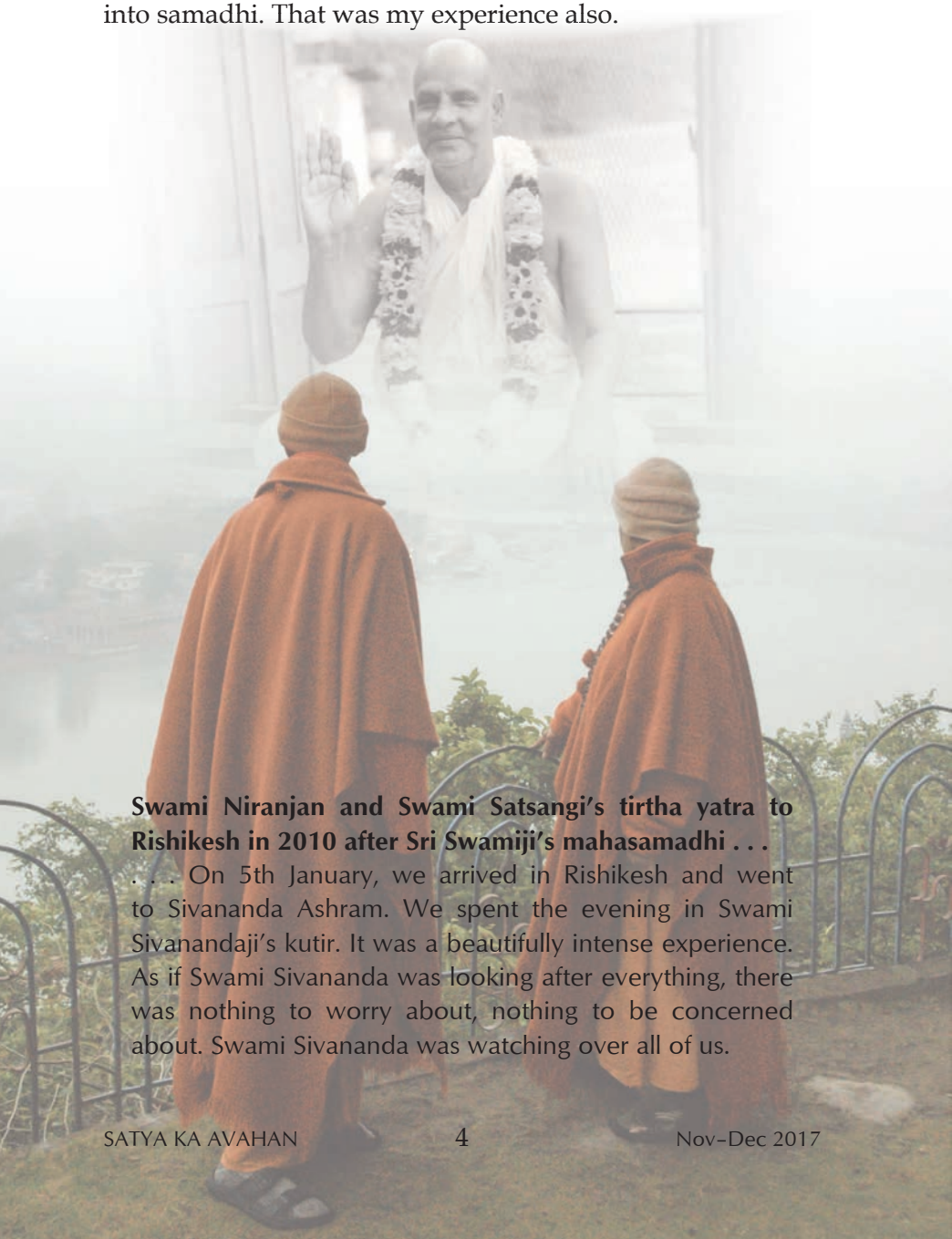

Swami Niranjan and Swami Satsangi's tirtha yatra to Rishikesh in 2010 after Sri Swamiji's mahasamadhi . . .

. . . On 5th January, we arrived in Rishikesh and went to Sivananda Ashram. We spent the evening in Swami Sivanandaji's kutir. It was a beautifully intense experience. As if Swami Sivananda was looking after everything, there was nothing to worry about, nothing to be concerned about. Swami Sivananda was watching over all of us.

ऋषिकेश, 1943-1956

गुरु होना बड़ा कठिन है, और शिष्य होना उससे भी कठिन। अपनी ही बात बताता हूँ। मैं जब स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में आया तब मुझे एक कमरा दिया गया। मेरा स्वभाव बड़ा ही विचित्र था। बिना कम्बल के जमीन पर सोता था, आश्रम से कम्बल मिला था, उसे भी लौटा दिया था। दरवाजा भी बंद नहीं करता था, क्योंकि मेरे पास कुछ था ही नहीं। कमरे में घड़े में पानी व गिलास भी नहीं रहता था। जब भी प्यास लगे, सीधे गंगाजी में जाता था। जंगल में शौच जाना पड़ता था, पर पास में जलपात्र भी नहीं रखता था। और मैं आश्रम का ज्वाइंट सेक्रेटरी था।

एक दिन स्वामी शिवानन्द जी निरीक्षण के लिए मेरे कमरे में आये। मेरी अलमारी देखी, खाली थी। चौकी भी खाली थी। उन्होंने पूछा, 'तुम्हारे कमरे में गिलास नहीं है क्या?' मैंने कहा, 'मैं गिलास नहीं रखता।' उन्होंने पूछा, 'क्यों नहीं रखते?' मैंने कहा, 'मुझे परिग्रह अच्छा नहीं लगता।' वे बोले, 'धत्, क्या फालतू बात बोलते हो, कहाँ से तुम यह सब सीख कर आये हो?' स्वामी शिवानन्द जी ज्यादा नहीं बोलते थे।

शाम को स्वामीजी नीचे गये तो उन्होंने आठ गद्दे, रजाई, मसहरी, चादर, तकिया, आठ गिलास, एक स्टोव, मिट्टी का तेल, चाय-शक्कर का डिब्बा, सब मेरे कमरे में भिजवा दिया। मेरी समझ में नहीं आया कि यह सब क्यों भेजा गया है। सोचा भण्डार गृह जैसे सब पड़ा रहेगा। मैंने सब सामान कोने में रखवा दिया। कई दिनों बाद स्वामीजी फिर आये। सब देखा और पूछा, 'चाय का डिब्बा इस्तेमाल करते हो या नहीं?' मैंने कहा, 'नहीं।' बाद में गुरुजी ने ऐसा फँसाया कि दूसरे दिन से चाय बनानी शुरू कर दी। दरवाजा भी बंद करने लगा। एक दिन स्वामीजी आये और बोले, 'चाय खत्म हो गई या है?' मैंने कहा, 'रोज थोड़ी-थोड़ी बनाता हूँ।' वे बोले, 'किसके लिए बनाते हो?' मैंने कहा, 'अपने लिए बनाता हूँ।' वे बोले, 'अरे, माधवानन्द, कृष्णानन्द आदि को भी बुला लिया करो।' मैंने सोचा, यह तो बड़ा झंझट है। कहाँ तो एक गिलास भी नहीं रखता था, अब दो आदमियों के लिए चाय बनाओ।

एक दिन जब स्वामी शिवानन्द जी को पता चला कि इस अंधे चेले के दिमाग में कुछ घुसने का नहीं है, तब उन्होंने मुझे बुलाया और कहा, 'धन-सम्पदा, गद्दा, चाय-चीनी, सब रख सकते हो, पर दूसरों के लिए। जो अपनी चाय नहीं पी सकते, वे दूसरों को दे सकते हैं।' मुझसे पूछा, 'गीता पढ़ते हो?' मैंने कहा, 'हाँ, पढ़ता हूँ।' उन्होंने कहा, 'आज से तुम बिल्कुल किताब बंद कर दो। आज से तुम पैसा रखो, एक कमरे की जगह पाँच कमरे रखो। तीस गद्दे रखो। जो भी आता है उसे चाय बना कर दो। बीमार को दवाई दो।' मैंने पूछा, 'यह सब अच्छा है क्या?'

उन्होंने कहा, 'जब तुमको मालूम पड़ जाएगा कि ऐसा करने से दूसरों की सेवा होती है, दूसरों को सांत्वना मिलती है, तब तुम्हारा आनन्द और बढ़ जाएगा। दवाइयाँ रखो, बीमारों को दो।' मैंने कहा, 'बहुत अच्छा स्वामीजी, मगर इसमें झंझट बहुत होता है। आदमी फँस जाता है।' स्वामीजी बोले, 'नहीं, सेवा की महत्ता को जानना चाहो तो ऐसा ही करो। दूसरों को इसमें सुख मिलता है, उन्हें मदद मिलती है। जब तुम्हें पता चलेगा तब तुम्हारा आनन्द बढ़ जाएगा।'

इसके बाद मेरा कमरा एक अजायबघर बन गया। मेरे कमरे में दवाई, लिफाफा, टिकट, पेन्सिल व फाउन्टेन पेन की इंक तक सब कुछ मिल सकता था। कोई भी आता, कहता, 'यह चाहिए।' 'ठीक है, यह लो।' कोई आता, 'स्वामीजी, मेरे पेट में दर्द है।' 'अच्छा यह दवाई ले लो।' तब मेरे को मालूम पड़ा कि त्याग का मतलब वस्तु का त्याग नहीं होता है। अपने लिए जो काम किया जाता है, वह स्वार्थ है। त्याग का मतलब अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए काम करो। *काम्यानां कर्मणां न्यासं*—यही संन्यास है। ऐसे थे स्वामी शिवानन्द जी। उन्होंने अपने शिष्यों को इसी तरह सच्चा मनुष्य बनाया। उन्हें अपने शिष्यों की एक-एक गतिविधि का ध्यान रहता था।

अधिक क्या कहूँ, मेरे सोने और जागने तक की खबर उन्हें रहती थी। शुरू-शुरू में मैं एक नंबर का 'लेट राइज़र' था, यह बात स्वामीजी की नजर में आ गई। सुबह 3 बजे खड़ाऊँ खट्-खट् करते और दरवाजा पीट-पीट कर मुझे जगा देते। मैं जग तो जाता, पर ज्योंही वे आगे बढ़ते, मैं पूर्ववत् बिस्तर में समाधिस्थ हो जाता।

आखिर यह बात भी उन्हें मालूम हो गई और उन्होंने मेरे कमरे में सोने के लिए, बल्कि यूँ कहिए कि मुझ पर चौकीदारी करने के लिए विधिवत् एक आदमी

को नियुक्त कर दिया। अब मेरी कठिनाई बढ़ गई, पर संकल्प लेने पर कठिनाई क्या है? मैं सबेरे उठ जाता और उस आदमी को कुछ जरूरी काम बता कर बाहर भेज देता। ज्योंही वह आदमी आँखों से ओझल होता, दरवाजा बंद कर बिस्तर पर पड़ जाता, और अपनी सफलता पर मन-ही-मन प्रसन्न होता। पर स्वामीजी को यह भी पता चल गया। आखिर मुझे अपनी आदत बदलनी पड़ी और अब तो ब्रह्ममुहूर्त्त और जागरण मेरे लिए पर्यायवाची हो उठे हैं।

स्वामी शिवानन्द जी अपने शिष्यों को सन्तान की तरह प्यार करते थे। रात को दो घण्टे रोज अखण्ड कीर्तन का कार्यक्रम रहता था। कीर्तन की महिमा समझाते हुए गुरुजी अक्सर चैतन्य महाप्रभु के बारे में बताते और उनकी बातें बताते-बताते वे विभोर हो जाते।

ललिता सहस्त्रनाम की साधना रात-रात भर चला करती, शाम को सात बजे से सुबह सात बजे तक सवा लाख जप करना पड़ता था। स्वयं स्वामीजी रातभर बैठ कर जप करवाते और करते थे। गीता और महाभारत का पाठ कभी-कभी सुबह से शाम तक चलता। इसी क्रम में तमाम उपनिषदों की 108 आवृत्तियाँ हम लोगों ने पूरी कर लीं। साल में दो बार सात दिनों की अखण्ड मौन साधना करायी जाती थी। दरअसल कर्म और इस प्रकार की साधना के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींचना कठिन था।

जाड़े में स्वामी शिवानन्द जी बादाम, किशमिश जैसा मेवा बहुत मँगाते थे। बादाम तोड़कर गिरी निकलवाते, फिर अपने हाथ से पैकेट बनाकर सबके कमरे में रखवाते थे। पूछते, 'मेवा खाते हो न?' किसी दिन अचानक जाकर देखते भी कि खाता है या नहीं। अपने शिष्यों के प्रति उनका बहुत स्नेह था।

स्वामी शिवानन्द जी जितने स्नेहशील थे, कर्त्तव्य के प्रति कठोर भी उतने ही थे। एक बार की बात है, एक बूढ़ा यात्री कहीं से घूमता-भटकता आश्रम आ गया। भोजन के बाद थाली धोने को हुआ, तो मैं बोल उठा, 'रहने दो बाबा, रामधनी साफ कर लेगा।' भोजनालय की व्यवस्था मेरे जिम्मे थी और रामधनी भोजनालय में ही सेवक के रूप में नियुक्त था। सामान्यत: रामधनी को मेरे आदेश का पालन करना था, पर उस यात्री की जूठी थाली साफ करने का प्रस्ताव सुनते ही वह हठात् बरस पड़ा, 'मैं जिस-तिस की जूठी थाली नहीं साफ करूँगा। मेरा हिसाब साफ कर दीजिए, घर चला जाऊँगा।'

उसके बर्ताव से मेरे अहम् को ठेस लगी। मैंने उसका हिसाब साफ कर दिया और आश्रम का दरवाजा दिखाकर कहा, 'अभी निकल जाओ यहाँ से।' जाने के पहले रामधनी शायद स्वामीजी से विदा लेने गया होगा, उन्होंने सारा प्रसंग सुना और कहा, 'ठीक है, सत्यम् ने तुम्हें निकाला है, मैंने तो नहीं निकाला। आश्रम से तुम्हें जाने की जरूरत नहीं, वह चाहे तो जा सकता है। तुम अब से मेरे सेवक हो, तुम्हें मेरे साथ रहना है।'

मैंने सुना तो सिर पीट लिया। कैसा भयंकर अपमान था मेरा!

दूसरे दिन प्रात:काल स्वामीजी द्वारा रातभर लिखे गये तमाम कागजों को समेट कर, उनका कमरा साफ करने के बाद, नियमित रूप से टाईप करने बैठा। कुछ पृष्ठों के बाद अचानक हाथ रुक गया। स्वामीजी ने एक पूरी कविता लिख डाली थी, 'ओ संन्यासी, अहंकार का त्याग कर, त्याग कर ...।' और मेरी आँखें कृतज्ञता से भर आईं। फिर तो मैं उनके आगे करबद्ध जा खड़ा हुआ और बोला, 'मुझसे भूल हुई, मुझे क्षमा कर दीजिए। रामधनी जहाँ भी चाहे रहे, मैं उसके साथ रहकर काम कर सकता हूँ।'

दरअसल स्वामी शिवानन्द जी अहंकार को संन्यासी का सबसे प्रबल शत्रु मानते थे, और अपने शिष्यों को बचा ले चलने के क्रम में जरूरत पड़ने पर एक शल्य-चिकित्सक की तरह कठोरता की सीमा छू लेते थे। सोचता हूँ, कितनी करुणापूर्ण थी वह कठोरता ...

स्वामी निरंजनानन्द की सन् 1968 में ऋषिकेश तीर्थयात्रा

सन् 1968 अप्रैल में विदेश जाने के 15 दिन पहले स्वामी जी ऋषिकेश गये थे, अपने गुरु जी की समाधि के दर्शन करने तथा उनसे आशीर्वाद लेने। 9 माह के योग टीचर ट्रेनिंग वाले विद्यार्थी भी थे, मैं व अम्मा जी भी थे। हम लोग 3 अप्रैल की शाम को ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ सब इन्तजाम था। एक बस खड़ी थी जो हम सबको आश्रम तक ले गई। वहाँ नई बिल्डिंग में हमें ठहराया गया। 6 कमरे हमें दिये गये थे। सब सामान रखकर, स्नान वगैरह से निवृत्त होकर, हम सब स्वामी जी के साथ गये अन्नपूर्णा में। पूज्य स्वामी चिदानन्द सरस्वती तो विदेश गये हुये थे, देखभाल स्वामी कृष्णानन्द जी सरस्वती करते थे। सेक्रेटरी थे स्वामी प्रेमानन्द जी सरस्वती। उनका आदेश था, पहले स्नान वगैरह के बाद भोजन, फिर ऊपर सबसे मिलने का कार्यक्रम, क्योंकि भोजन 5 बजे शाम को हो जाता था।

हम लोग भोजन के बाद पूज्य स्वामी शिवानन्द जी की समाधि के दर्शन के लिए गये। फिर विश्वनाथ मंदिर और फिर स्वामी कृष्णानन्द जी तथा स्वामी माधवानन्द जी की कुटीरों में। मैं स्वामी जी के साथ ही रहता था। सबकी आँखें मेरे ऊपर लगी रहती थीं। मुझे आश्चर्य से देखते थे। स्वामी जी सब का परिचय देते थे। मेरे लिये कहते, यह अपना परिचय स्वयं है, इसी से पूछो। स्वामी कृष्णानन्द जी ने पूछा, 'भाई, तुम्हारा नाम क्या है?' मेरे मुँह से स्वामी जी के ही शब्द निकले—जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी निरंजन सरस्वती। स्वामी कृष्णानन्द जी ने कहा, 'ओ भाई, इतने बड़े नाम से तो हम डर गये!' सब आकर स्वामी जी से मिल रहे थे, प्रसन्न हो रहे थे। खूब हँस रहे थे। फिर हमने स्वामी सत्यानन्द जी की पुरानी कुटिया देखी।

हम लोगों को स्वामी जी पुरानी बातें बताते जा रहे थे। हम लोग विश्वनाथ मंदिर गये। बगल में एक कमरा है जहाँ स्वामी शिवानन्द जी की मूर्ति है, जो

खिड़की से ऐसी दिखती है कि मानो स्वामी शिवानन्द जी साक्षात् बैठे हैं। और ऊपर गये, वहाँ अखण्ड कीर्तन भवन है, जहाँ 24 घंटे भजन-कीर्तन होते रहता है। निश्चित समय पर सुबह और शाम 7 से 9 बजे तक विशेष सत्संग होता है। उस दिन स्वामी सत्यानन्द जी के सम्मान में विशेष सत्संग हुआ। स्वामी कृष्णानन्द जी, स्वामी माधवानन्द जी, एक अमेरिकन स्वामी जी और माता हृदयानन्द जी ने प्रवचन दिया, फिर स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने आश्रम जीवन की झाँकी बताई।

दूसरे दिन भी सत्संग हुआ। बाहर से भी लोग आये थे। प्रवचन हुआ। प्रसाद भी रोज बँटता था। तीसरे दिन विशेष सत्संग हुआ विदाई का। पूज्य स्वामी सत्यानन्द जी को पुस्तकें, फल का पिटारा व मिठाई भेंट दी गई और हलुवा का प्रसाद बाँटा गया।

दिनांक 4 की सुबह हम लोग समाधि दर्शन को गये। फिर हम लोग प्रेस देखने गये। प्रेस में मुझे बहुत दिलचस्पी है, क्योंकि राजनाँदगाँव में मेरा भी एक 'योग विद्या प्रेस' है, इसलिये प्रेस देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई। फिर हम बड़े स्वामी जी की कुटिया में गये। वहाँ सब को ही विशेष अनुभूति हुई। उनका आसन, कुर्सी, बिस्तर, ध्यान की जगह, टाइप राईटर, पुस्तकें—सब हमें दिखाये गये। ऐसा लगता था कि स्वामी शिवानन्द जी कहीं से भी आते ही होंगे। स्वामी सत्यम् सब को बता रहे थे अपने गुरुदेव की बातें, पर मेरी आँखें देख रही थीं कि कभी उनकी आँखें

चमक जाती हैं, कभी कुछ ढूँढने लगती हैं, कभी गला भर आता है, कभी कुछ सोचने लगते हैं। अचानक मुझे लगा कि स्वामी जी, शिवानन्द जी बन गये हैं और मैं सत्यानन्द जी बन गया हूँ। स्वामी जी मुझसे कह रहे हैं, 'ओ स्वामी सत्यानन्द जी, पुस्तकें सब को दीजिये,' और मैं चौंक पड़ा ...

दिनांक 6 से हरिद्वार में अर्धकुम्भी मेला शुरू था। दिनांक 5 को हमारे बहुत-से साथियों ने दिनांक 6 के सुबह 3 बजे हरिद्वार जाने का प्रोग्राम बनाया। मैंने स्वामी जी से पूछा, 'आप जायेंगे स्वामी जी?' तो उन्होंने बताया, 'मैं पहले ऐसी जगह बहुत जाया करता था। मेरे गुरु जी मना करते थे, उस दिन मुझे विशेष काम देते थे पर मैं भी रात को ही वह काम, चाहे लिखना हो, प्रसाद बनाना हो, या जो भी काम हो, पूरा करके सुबह चल ही देता था। एक बार भीड़ में फंस गया तो उत्तरीय गायब हो गया। किसी तरह गंगा जी तक भीड़ के रेले से पहुँच ही गया, पर स्नान करते समय धोती भी शायद किसी के पैर में फंसकर चली गई। मैं भीड़ में पानी के अन्दर कब तक रहता? मैंने सोचा, नागा साधुओं की टोली जा रही है, इतने नागाओं में एक नागा और सही, पर मन में कितनी परेशानी हुई। किसी तरह एक परिचित मिले, उनसे वस्त्र मिला, और जब आश्रम पहुँचा तो बड़े स्वामी जी द्वार पर ही खड़े थे। देखते ही बोले, 'सत्यम् वस्त्रं देहि।' मैंने चरणों में पड़ क्षमा याचना की, और कहा, आपकी आज्ञा न मानने का फल मिल गया, अब ऐसी गलती नहीं होगी, और तभी से हमने कुम्भ में जाना छोड़ दिया है।'

दिनांक 6 की सुबह तीन बजे कई लोग हरिद्वार गये। मैं भी चलने लगा तो अम्मा जी ने मना किया। मैंने नहाने जाने को बहुत कहा तो वे मुझे शॉल ओढ़ाकर बोलीं, 'चलो घूमेंगे।' हम लोग गंगा किनारे घूमते-घूमते बड़े स्वामी जी की कुटिया की तरफ चले गये। उधर गहराई व चट्टान के कारण नहाने वाले नहीं रहते।

मुझे बातें व कहानी सुनने का बहुत शौक है। कुछ-कुछ पूछते जा रहा था। कुटिया की ओर गंगा किनारे सुनसान में मुझे उजाला-सा लगा। मैं जल्दी से आगे बढ़ा और वापस आकर बोला, 'अम्मा जी, वहाँ बड़े स्वामी जी की ज्योति है, जल्दी चलिये,' और हाथ पकड़कर दिखाया, 'ये देखिये।' अम्मा जी ने धीरे से कहा, 'ये बड़े स्वामी जी नहीं, अपने स्वामी जी हैं, ध्यान कर रहे हैं।' फिर वापस आकर उन्होंने बताया कि 'कई बार मंत्र देते समय बड़े स्वामी जी के चेहरे से ज्योति इसी प्रकार निकलती थी। स्वामी जी अपने गुरु का ध्यान कर रहे होंगे, और यह ज्योति ध्यान की होगी या गुरु जी के आशीर्वाद की होगी।'

अम्मा जी ने आगे कहा, 'गुरु और शिष्य दोनों ही महान् हैं। गुरु जी का शरीर समाधि में है, पर उनकी आत्मा उनके शिष्यों में ओतप्रोत है और उनके मार्ग में ज्योति बिखेरती, उनके पथ को आलोकित कर रही है।' मेरी तो समझ में कुछ आ ही नहीं रहा था। बस स्वामी जी और ज्योति ही दिखते थे ... ■

Rameshwaram, 1950

I had gone to Rameshwaram with my guru, Swami Sivananda, in the 1950s. Our team of sannyasins had worked very hard to prepare for the All-India program and at the conclusion of the events, Swamiji had told us to go to Rameshwaram and have darshan of the Shivalingam there. When I bowed before the Shivalingam at Rameshwaram, I had a vision of an area with buildings beside a river on a hillock. I also had the deep feeling that the vision was somehow related to me, but I could not understand it and eventually this experience left my mind.

Much later in 1982, when Ganga Darshan was being constructed and the design was finalized, it suddenly flashed before me that I had seen this site, the building, the hillock and the river in my vision at Rameshwaram. Ganga Darshan is the manifestation of that vision. Even the details of the vision have become clear to me, and therefore I know that I am not the doer, that things are being done through me. The plans for Ganga Darshan were ready well before it was built. Somewhere, much before, it was built in space. First, things are built in space and time, then they become manifest reality. That is how Ganga Darshan was built.

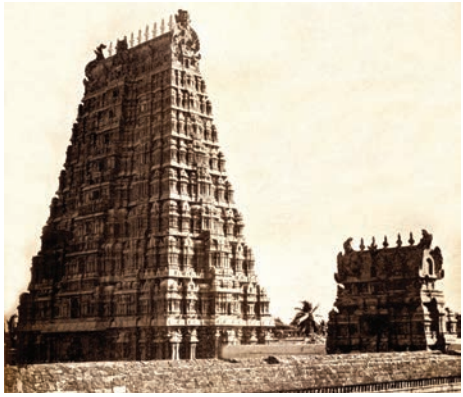

Swami Niranjan and Swami Satsangi's tirtha yatra to Rameshwaram in 2011 . . .

. . . Upon arrival on the first day, we scouted the temple for possible places to sit to perform our sadhana. We found it right behind the walls of the sanctum sanctorum, barely a few feet away from the presiding deity. On the same day, we had our first darshan of the Shivalingam during the evening arati. Beginning the next day, for three consecutive days from 7 am to 12 noon, we sat for our anusthanas. In the afternoons, from 3 pm to 6 pm, we would spend time in the Devi enclosure at the temple, chanting stotrams and doing japa.

All through the stay, the presence of Swami Sivananda was a palpable reality. It was as if we were reliving the time when Swami Sivananda had visited the island with Swami Satyananda. There were visions of Sri Swamiji as a young disciple standing on the shores, brimming with dedication to guru and commitment to a cause.

मदुरै, 1950

अपनी अखिल-भारत-लंका-यात्रा का लंका अभियान समाप्त कर स्वामी शिवानन्द जी की दिग्विजय-मण्डली पुन: धनुषकोटि में आ गई। 14 अक्टूबर को दिन के सवा नौ बजे हमने भारत-भूमि पर पदार्पण किया। उसी दिन सायंकाल के समय हमारी दिग्विजयवाहिनी ने 6 बजे मदुरा की ओर प्रस्थान किया।

15 अक्टूबर को प्रात:काल के चार बजे हमने विजय-वाहिनी के चारों ओर मंगल-गीत गाते हुए भक्तों के आने का आभास पाया। डॉ. सुब्रह्मण्यम् तथा मां जयलक्ष्मी ने नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों तथा उच्च-कोटि के ऋत्विकों के साथ स्वामी शिवानन्द जी के स्वागत का आयोजन किया हुआ था। वेद-विधानानुकूल स्वामीजी का अभिवादन सम्पन्न हुआ।

विधिवत् अभिनन्दन के उपरान्त मंगल बाजे बजे; डंके पर चोट पड़ते ही स्वर्णावेष्टित दो वज्र-दन्तियों ने नागस्वरम् तथा मृदंग बजाते हुए मंगल-चारणों का अनुसरण किया। सप्त-श्वेताश्वसमायुक्त चतुश्चक्रीय रथ पर दिग्विजयी स्वामीजी समासीन थे।

रथयात्रा का वह समारोह योजन-त्रय मार्ग पर लाखों पुरवासियों को स्वामीजी के दर्शनों का भागी बनाता हुआ, लाखों की संख्या में विराट् के दर्शन करता हुआ, फूलों से आवर्णित मार्ग पर, अट्टालिकाओं के नीचे राजपथ पर, संकीर्तन-मण्डलियों के समुदाय से नि:सृत हुए हरिनाम के अमृत-रस में ओत-प्रोत हो, 8 बजे 'सौराष्ट्र विद्यापीठ' के प्रकाण्ड-प्रांगण में प्रविष्ट हुआ; जहाँ अनुमानत: 70 सहस्र भक्त नर-नारियों ने दिगन्त-व्यापिनी शुभ्र-कीर्ति के अक्षुण्ण भोक्ता—श्री स्वामीजी के दर्शन संप्राप्त किए तथा देवता का प्रसाद पाया।

पादपूजा के अनन्तर दिन के 12 बजे 'श्री मीनाक्षी मन्दिर' की सुरम्य-पद-पल्लव-पुंजित भूमि चमत्कृत हो उठी। धीर-वीर-गम्भीर महर्षि प्राकारों की सीमा में अनुप्रविष्ट हुए तो सहस्रों भक्त उस देव-मन्दिर में साक्षात्-देव के दर्शनों के लिए उपस्थित थे।

देवी मीनाक्षी की पूजा तथा सुन्दरेश्वर लिंग की आराधना के उपरान्त दिन के 3 बजे स्वामी जी ने 'सेतुपति विद्यापीठ' में विद्यार्थियों तथा उनके अभिभावकों को अपना सन्देश दिया।

रात के 8 बजे 'मीनाक्षी देवालय' का विशाल प्रांगण मद्रपुरी के नागरिकों से सज रहा था। परकोटे के एक ओर नारीमण्डल और दूसरी ओर पुरुषमण्डल बैठा हुआ था। जनता के प्रतिनिधियों की ओर से स्वामीजी को सम्मान-पत्रों द्वारा आदर प्रदान किया गया। अपने व्याख्यान में स्वामीजी ने भक्ति का उपदेश दिया

तथा लक्षानुमानिता जनता को कीर्त्तन करने पर विवश किया। थोड़ी देर में जन-गर्भ से उद्भूत हुई कीर्त्तन की स्वर-लहरी, गोपुरों से ऊपर असीम-आकाश और विस्तृत वायुमण्डल में तन्मय हो गई। अपनी मधुर-ध्वनि से हरिनाम के गुण गाते हुए, महात्मा ने मद्रपुरी की मातृस्वरूपा ईश्वरीय चेतना को पुन: एक बार जगाया और सबको यह सन्देश दिया कि 'ईश्वर-साक्षात्कार विश्व की विराट्-सम्पत्ति है। आत्मा की प्राप्ति किसी काल-विशेष पर निर्भर नहीं, किसी स्थान-विशेष में सीमित नहीं– किन्तु सब कालों, अवस्थाओं और सभी स्थानों में सम्प्राप्नीय है, जिसका ज्ञान प्रत्येक के हृदय में ही हो जाता है; निरन्तर-शुद्ध कर्म करने से, अकैतव-भक्ति के दृढ़ होने से, सत्कार-सेवित-योग तथा सद्वैराग्यनिष्ठ-ज्ञान से।'

स्वामी निरंजन की सन् 2014 में मदुरै तीर्थयात्रा

अक्टूबर के महीने में हमने दक्षिण भारत के तीन जाग्रत स्थानों की तीर्थयात्रा सम्पन्न की। सबसे पहले हम मदुरै गए जहाँ पर माँ मीनाक्षी का मन्दिर है। वहाँ पर हमने तीन दिनों तक गहन अनुष्ठान किया। मीनाक्षी मंदिर छ: एकड़ के क्षेत्र में बना है। मंदिर में हजारों खम्भे हैं और एक ही छत है। करीब पचास-साठ फुट ऊँची छत है और उसके नीचे अनेक छोटे-छोटे मंदिर, मूर्तियाँ और गर्भगृह बने हुए हैं।

ऐसा माना जाता है कि मदुरै में शिवजी चौरासी बार आये हैं और इस क्षेत्र में उनकी चौरासी कहानियाँ भी हैं। यह उनका बहुत ही प्रिय क्षेत्र रहा है और यहीं पर माँ मीनाक्षी के साथ उनका विवाह भी हुआ था। मीनाक्षी मंदिर के नाम

से लोग सोचते हैं कि यह केवल देवी का मंदिर है, लेकिन वहाँ पर शिव और शक्ति, दोनों का ही स्वरूप है–मीनाक्षी देवी और सुन्दरेश्वर महादेव। उनको सुन्दरेश्वर इसलिए कहा गया कि माँ मीनाक्षी के साथ शादी के समय उन्हें अपने सबसे बढ़िया वस्त्रों में आना पड़ा था। भस्म और सर्प वाले भेष में नहीं, सुन्दर बनकर आना पड़ा था। कन्यादान स्वयं भगवान विष्णु ने किया था, क्योंकि वे तो पार्वती के भाई लगते हैं न!

मीनाक्षी मंदिर में भगवान सुन्दरेश्वर का बहुत ही प्राचीन शिवलिंग है। कहते हैं कि जब मंदिर पर आक्रमण हुआ था, तब पुजारियों ने शिवजी के गर्भगृह को मिट्टी से ढक दिया ताकि पता नहीं चले कि इसके पीछे कुछ है। चालीस साल बाद जब वे दीवार को हटाते हैं तो पाते हैं जो फूल माला पहनाई गई थी, अभी भी ताजी है। जो दीपक जलाया गया था, अभी भी जल रहा है। जो नैवेद्य वगैरह अर्पित किये गये थे चालीस साल पहले, अभी भी ताजे हैं जैसे कि रोज कोई वहाँ पर जाकर पूजा करता था। इसलिए भगवान सुन्दरेश्वर और मीनाक्षी मैया का यह स्थान बहुत ही जाग्रत क्षेत्र माना जाता है। ■

Parivrajaka Tirtha

परिव्राजक तीर्थ

Gangotri, 1956

I have loved this world and its inhabitants since time immemorial, for it is in and through this world that I've beheld the many lilas that the Almighty enacts. The sorrows of the world have been my tears and its joys my laughter. I've never identified myself with the transcendental and unmanifest Absolute. And I never will. But this trip to Gangotri has shattered some of these dreams of everlasting love for the manifest world. Within the lila body of the Lord, I can hear notes of discord. Now only my physical body is here, I am somewhere else. I feel as if I am walking all alone amongst mountains, forests, rivers and terraced fields. There is none but me, walking with staff in hand. I am beginning to like the quiet solitude. There are countless paths in the snow-covered eternal Himalayas that I can follow.

The roar of the Ganga hurtling down the Himalayas is drowning out all the other shrill and discordant noises of the world. The sheer vastness of the towering peaks is making petty human egos dance at its feet. Is this the message I am supposed to receive from the Ganga and the Himalayas?

Aami yantra, tumi yantri – "I am but a vehicle, and O Mother, you are its driver. Whichever way you drive, that way shall I proceed." This is the feeling uppermost in my mind.

Swami Niranjan and Swami Satsangi's tirtha to Gangotri in 2010 . . .

. . . Having paid obeisance to Mother Ganga, we emerged from the temple and went for a walk along the banks of the river. It was about four in the evening. As we strolled along, basking in the rarefied air and the spiritual charge of the place, Swami Satsangi stopped, pointing to a high mountain peak. I looked. The falling snow and natural snow banks on protruding rocks had created a clearly visible image: the face of Sri Swamiji wearing a crown, myself with shaved head and Swami Satsangi with long hair. It was as if Gangotri had welcomed in her fold the two offspring of her beloved son, Swami Satyananda, and Sri Swamiji was there, etched on the mountain, blessing and reminding us, 'You will always be with me.'

केदारनाथ, 1957

मुझे जंगल, पहाड़, सरिता, चन्द्रमा और चलने से प्रेम है। ये मुझे जीवन के सत्य प्रतीत होते हैं। जिसने जीवन में सच्चाई से इस आनन्द और खूबसूरती का मजा नहीं उठाया, वह ईश्वर सृष्टि के माथे का कलंक है। जो केदार नहीं गया, वह काश्मीर का आनन्द कैसे अनुभव करेगा? इसी रास्ते से पाँचों पाण्डव, द्रौपदी व कुत्ते के साथ गये थे ...। यह मार्ग सनातन है। सबको इस पथ पर चलना होगा। इसलिए हे यात्री! श्रम सीकर, अंग क्लांति, गरम सूरज, ठण्ढी हवा, भूख और प्यास के बावजूद भी चले चलो, तुम्हारा केदार महापंथ अब करीब है। इसका चप्पा-चप्पा कर्म, कविता और प्रेम के गीत गाता है। यह सड़क जो केदार से मिलने जा रही है, मालूम होता है, चिर-वियोगिनी की तरह अपने इष्ट से मिलने दौड़ रही है। वहाँ तो मुझे भी लगा था कि मैं भी किसी से मिलने जा रहा हूँ।

गौरीकुण्ड समुद्र की सतह से 6000 फुट की ऊँचाई पर है। वहाँ गरम पानी का कुण्ड है। आगे 7 मील की चढ़ाई है। चन्द्रमा की शान्त छटा और चिर वियोगिनी पर्वत-राशियों के चिर-द्रष्टा नेत्र मंदाकिनी का चिर-किल्लोल प्रेम राग और पथ पर तरु-पल्लवों की खिसकती छाया हमारे मन को अपनी ओर खींचते थे, परन्तु सबसे अधिक आकर्षण था 12750 फुट की ऊँचाई पर रहने वाले 'किसी' का, जो अन्य सुन्दरताओं के खिंचाव को भी कम कर देता था। जबरदस्त चढ़ाई, सब बढ़ते जा रहे थे, मीलों के पत्थरों से भी साथी का पता पूछ रहे थे, उत्तर भी मिला, संकेत भी मिला, फिर आगे बढ़े, ठण्ढी हवा चलने लगी, हृदय का पम्प श्रम का अनुभव करता जा रहा था। केदार का श्वेत हिमांचल मानो मिलने के लिए निकट आने लगा था। सब गधों की तरह कम्बल लादे, अन्धों की तरह लाठी टेकते, लंगड़ों की तरह खिसकते-से 'जय केदार नाथ' का उच्चारण करते बढ़ रहे थे। 10500 फुट, गंगोत्री की ऊँचाई पर पहुँच गये। तीन ओर के शिखर गंगोत्री की तरह खड़े नहीं, ढलुआ हैं। अत: बेशुमार हिम राशि तीनों ओर सोई पड़ी है और शीत गंगोत्री से बहुत अधिक है।

केदारनाथ सामने है, 12750 फुट ऊँचा। तीनों ओर इसके हिममंडित पर्वतों के ढलुआ मैदान, चारों ओर खुली हरीतिमा, संकुलित मैदान, न वृक्ष, न पौधे, एक संन्यासी के सिर की तरह सफाचट! साहस का प्रतीक है यह, मानवता के चिर पोषित आलस्य को चुनौती है केदारनाथ का आह्वान। कोटि-कोटि अहंकार रूपी पशुओं की बलि दी जा चुकी है इसके प्रांगण में। इसके रूप को किसने देखा है? इसका पता कौन जानता है? *'कइरुथा वेद मंत्र स:'* क्या वह यहाँ है? इस पत्थर के मंदिर के अंदर कौन देवता छिपा है? इस पत्थर को कौन तोड़ेगा? पशु-स्वभाव-सुलभ क्रूरता के पत्थर को तोड़कर जो इस मंदिर में प्रवेश करेगा, उसे ही वह दिखेगा।

दोपहर से बारिश शुरू हुई, बर्फ गिरने लगी, हवा चलने लगी। पण्डे ने हमें और रजाई-कम्बल दे दिए, एक मोटा कालीन और दरी भी दी, तो भी ठण्ढी–ओह! मैं शाम को पाँच बजे ऊपर चढ़ने लगा, करीब 500 फुट तक और गया। पर्वत ढलुआ था, पैर रखने को पत्थर भी नहीं मिल पाता था, थूक गिराये नहीं गिरती थी। जूते जमने लगे, हृदय मानो शिथिल होने लगा, ऑक्सीजन कम होती जा रही थी। वहाँ से मंदाकिनी का गर्भ-गृह देखा, स्वर्गारोहण का रोमांचक पथ देखा, ऐसा लगा उछल कर आकाश छू लिया जाए।

इतिहासों के साक्षी अनेक हिमशिखरों के दर्शन किये। नयनों को अमृत मिला। अन्तर सरोवर से किसी अतीत की स्मृति जागी। जीवन में पहली बार अकारण रोना आ गया। आँखें डबडबाईं, बहने लगीं, हिचकियाँ आईं। इतने विशाल सौन्दर्य, शान्ति, सिद्धि के देश! आज तू क्या हो गया है! कितना नीचे गिर गया है! तूने मंदाकिनी का अमृत पीकर समाज में जहर उगला है, तूने साहस के सनातन शंख को तूती की आवाज समझ लिया है।

भारत वह क्षेत्र है जहाँ से भागवत-सभ्यता का उदय हुआ, मंदाकिनी की धाराओं, पर्वतों के उतारों, उबड़-खाबड़ पगडंडियों के सहारे से वह उतरी, भारत, अरब, ग्रीस तथा पूरे विश्व में व्याप गई। इसी ने ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, महावीर को जगाया, पर आज वह भय से परिपूर्ण गृहस्थों की भावनाओं का नाजायज फायदा उठाने का बहाना बन गयी है। केदार! तूने ही तो हिरण्यगर्भ रूप में वेदों का उच्चारण किया। पर आज तेरे उत्तराधिकारी कहलाने वाले, 'पाँच आना, दस आना, बारह आना, जो श्रद्धा हो, दे दो भाई' का उच्चारण करते फिरते हैं ...।

स्वामी निरंजनानन्द की सन् 2013 में केदारनाथ तीर्थयात्रा

केदारनाथ में अपने प्रवास के अंतिम दिन, रात के 11 बजे हम पुन: मंदिर पहुँचे। भगवान केदारनाथ का मध्यरात्रि अभिषेक हमारे अनुष्ठान की अंतिम क्रिया थी। इस अभिषेक के दौरान हम शिवलिंग के एकदम करीब थे। यह हमारा परम सौभाग्य था क्योंकि इसकी अनुमति प्राय: किसी को नहीं दी जाती। वहाँ प्राय: प्लास्टिक या कपड़े के फूलों से ही शिवजी की पूजा की जाती है। इसलिए हमने पहले ही दिल्ली फोन करके फूल, बिल्व पत्र, शृंगार हेतु वस्त्र तथा अभिषेक के लिए अन्य आवश्यक सामग्री लाने के लिये कह दिया था। एक अर्से बाद शिवलिंग का अभिषेक असली फूलों और बेल पत्तों से हुआ। शिवसहस्रनामावलि का पाठ किया गया और प्रत्येक नाम के साथ बड़ी श्रद्धा के साथ बिल्व पत्र और कमल पुष्प शिवलिंग को अर्पित किये गये। हमने अपनी सभी मालाएँ, स्वामी शिवानन्द जी एवं श्री स्वामीजी की सभी तस्वीरें और अपना छोटा-सा शिवलिंग भी भगवान केदारनाथ पर रखा। शिवलिंग का शृंगार बहुत ही सुन्दर ढंग से किया गया। अभिषेक मध्यरात्रि तक सम्पन्न हो गया।

हम सभी गेस्ट हाऊस लौटे जहाँ हमने अपने साथियों से कहा, 'अब यहाँ करने के लिए कुछ शेष नहीं। कल सुबह छ: बजे हम लोग यहाँ से निकल चलेंगे।' छ: बजे हम केदारनाथ से निकल पड़े और बारह बजे तक हम रामबाड़ा पहुँच गए। जैसे ही हम रामबाड़ा पहुँचे, उसी समय पर्वत शिखर पर छाया घना बादल फटा और मूसलाधार बारिश होने लगी। हम तेजी से पैदल उतरते गए और जैसे ही हम गौरीकुण्ड पहुँचे, ऊपर जबरदस्त भूस्खलन हुआ और रामबाड़ा का पूरा गाँव तहस-नहस हो गया। गौरीकुण्ड से हम कार में बैठकर सोनप्रयाग के लिए रवाना हुए। जब तक हम सोनप्रयाग पहुँचे, गौरीकुण्ड का पुल बह चुका था और बीस गाड़ियाँ पानी में गिर गई थीं। हमारे पीछे भयंकर भूस्खलन हो रहे थे, जिनसे सब कुछ नष्ट होता जा रहा था।

इस महाविनाश से हम कुछ ही घण्टे आगे थे। एक दिन में हमने लगभग डेढ़ सौ भूस्खलन देखे होंगे। कार के आईने में हम अपने पीछे ऊँचे पहाड़ों को धराशायी होते, सड़कों और गाँवों को बहते देख रहे थे। हमारे पीछे रुद्र की ताण्डव लीला चल रही थी, फिर भी हम पूर्णत: निर्भय और निश्चिन्त थे। सड़क पर जगह-जगह बड़ी-बड़ी चट्टानें गिरी पड़ी थीं, लेकिन हमारी कार को उनके बीच से निकलने की जगह मिल ही जाती थी। हमने हनुमान चालीसा की सी.डी. लगा रखी थी और ऐसा लग रहा था जैसे हमारी कार हनुमान जी के हाथों में हैं और वही मार्ग के सभी संकटों का मोचन करते जा रहे हैं।

इस तीर्थयात्रा का संदेश कुछ ऐसा था मानो भगवान शिव हमसे कह रहे हों, 'मुझमें विश्वास रखो। तुम्हें मेरा दर्शन प्राप्त हो गया। अब तुम यहाँ से जाओ, क्योंकि मैं सब कुछ बदलने जा रहा हूँ।' भगवान केदारनाथ का अभिषेक करने वाले शायद हम आखिरी व्यक्ति थे। भगवान के इस दिव्य धाम पर जाने का, उनके दर्शन प्राप्त करने का हमें जो दुर्लभ अवसर मिला, इसके लिए हम भगवान के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं। इस केदारनाथ यात्रा में भगवान शिव ने अपने रौद्र स्वरूप का परिचय दिया। लेकिन अपने दिल की गहराई में हमें यही लगता है कि वे हमें दर्शन देने की राह देख रहे थे। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि सबकुछ कायापलट करने से पूर्व उन्हें हमारी ही प्रतीक्षा थी।

हम एक साधारण तीर्थयात्री के रूप में एक विशेष उद्देश्य और प्रयोजन के साथ भगवान के दरबार गये थे, जहाँ हमें बिना किसी विशेष कठिनाई या संघर्ष के सब कुछ प्राप्त हो गया। हमें भगवान शिव के अपार अनुग्रह के साथ-साथ उनके ताण्डव नृत्य का भी प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। याद करने पर यात्रा का पूरा अनुभव अविश्वसनीय-सा लगता है; जहाँ एक ओर साधना में सफलता का संतोष था, वहीं दूसरी ओर घोर विनाश और विपत्ति को देख गहरी तकलीफ भी हुई। अगर हृदय में दूसरों के लिए दु:ख और सहानुभूति है तो साथ ही एक गहन उपलब्धि की अनुभूति भी। हम जिसलिए केदारनाथ गए थे उसे पाकर लौटे। ■

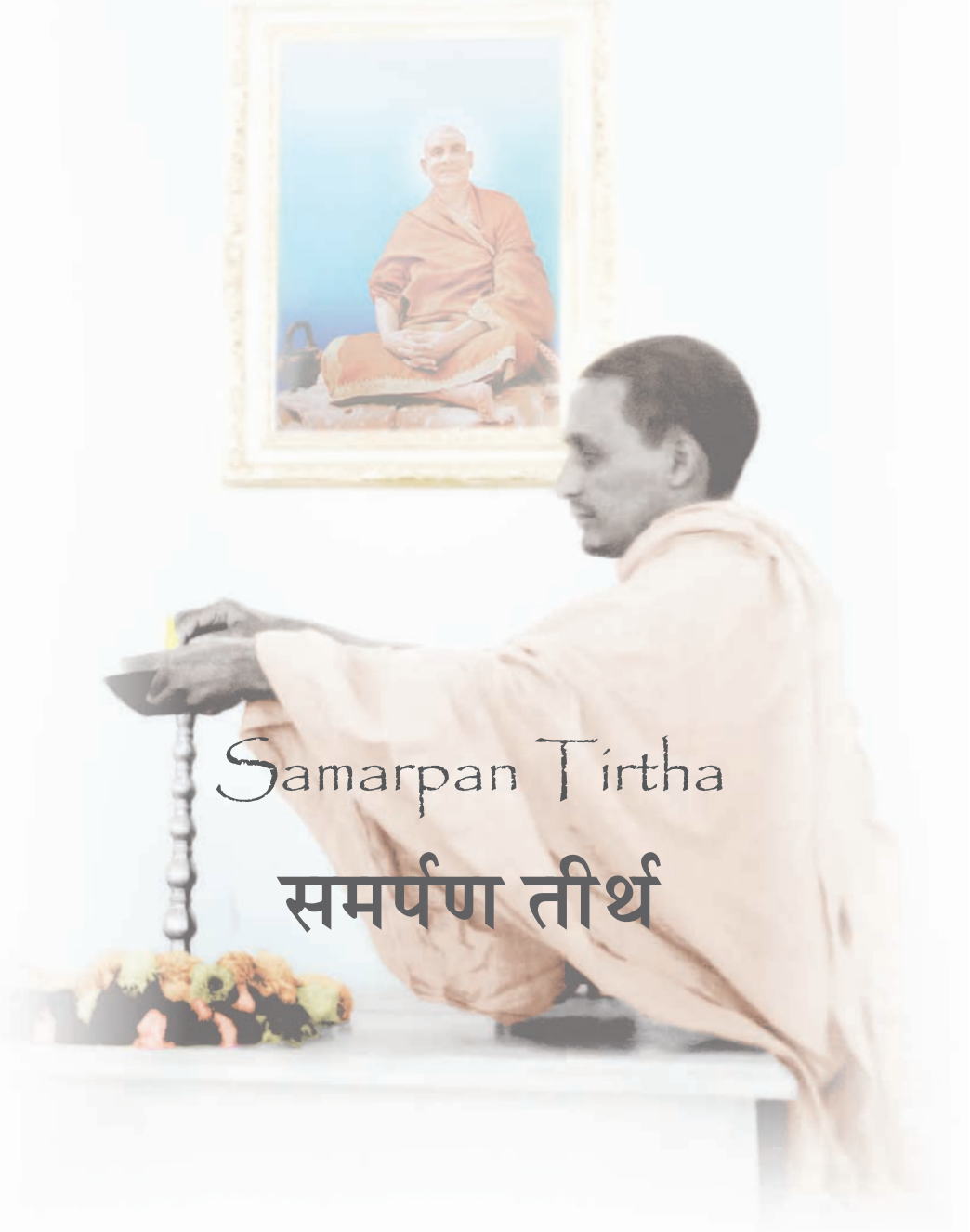

Samarpan Tirtha

समर्पण तीर्थ

Munger, 1963–1988

During the period of my wandering, I came to a place called Munger, in Bihar. There, I used to spend my days and nights in an old building on top of a hillock. They were periods of total nightmare, I thought I would go insane. A series of experiences would come, sometimes inner experiences, when I knew that they were within myself, but also many times they appeared to be happening outside, though I knew that nothing was happening there.

There is an interesting history attached to that hillock which, I believe, accounts for the experiences I had there. Over five thousand years ago, around the time of the Mahabharata war, a great yogi, a tantric, lived there. He was the king of that area. His name was Karna and he was the immaculate son of Kunti. He ruled this area called Anga, the present-day Munger, and Bhagalpur district, where I stayed, and the hillock is supposed to be the place where he practised tantra.

The story goes that every night he used to offer his body to sixty-four yoginis. When I had those experiences in that place, I did not know why they were happening, and it was not until many years later that someone told me the story that this was the place where Karna had practised his great tantric sadhana.

After five thousand one hundred and eighty-three years, the magnetism of the place still survived! You may or may not believe that. That place is where the ashram is now situated. It houses several hundred people, and is always full. People come because they think that when they go there all their physical, mental and spiritual maladies will be gone.

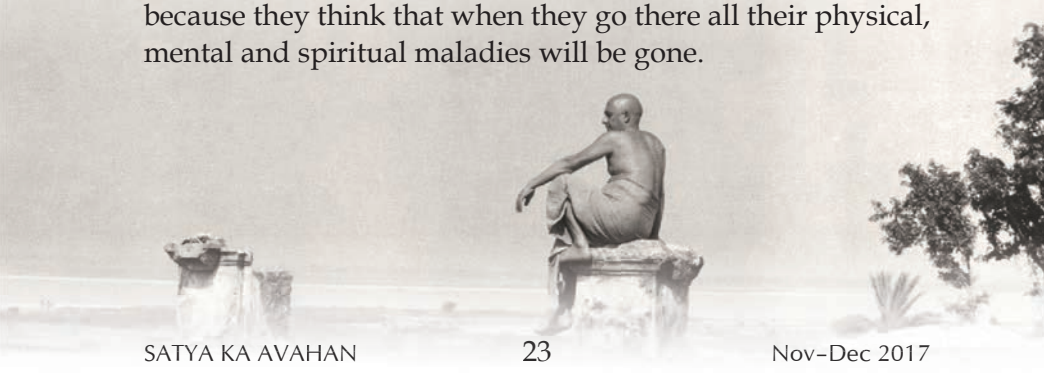

I was in Munger the day Swami Sivananda left his physical body. At midnight I had a vivid vision of my guru bidding me farewell. He told me he was going away. I became completely confused. I could not determine whether what I saw was a dream or reality. The place I saw in the vision was not Munger, it was Rishikesh. I saw myself sitting in a meditative posture on the rock from which I used to dive. I saw Swamiji sitting in a boat which was moving from one bank to the other. There was an accompanying sound of conch, bells and drum. The flywheel of the boat sprayed some water on me as it went past. The water was the blessing for me from my guru.

In August 1963, I returned to Munger from Rishikesh after attending Swami Sivananda's mahasamadhi ceremony. Until then, there was nothing in my mind about establishing a yoga ashram. One night while I was asleep at Anand Bhavan, I found that my room was open and the tall figure of Swamiji came there in flesh and blood. There was no doubt about it. Of course, by then I was wide awake, and Swamiji began to speak to me in Tamil, not in English.

I knew this was not Swamiji's physical form. I knew that he was no more on this earthly plane. I saw him as a higher reality. He said, "What program have you decided upon for yourself?" I told him, "Swamiji, I have no program at all." He said, "Why don't you light a lamp and carry on the work according to the plan we made in 1943?" There might have been something in my subconscious mind but consciously I had only one mission: to keep on roaming, to eat whatever little I could get twice a day and to sleep properly. I'd say to myself, "Do not mind anybody. This world is the tail of a dog, and things go on."

At Anand Bhavan I used to get up at 3 a.m., take my tea and again rest, no thinking of this world, of what has happened and what has not happened. I was not interested. That was the type of life I used to lead. Two things have disturbed my peace; one is my guru and the other is my disciples. I never would have established a yoga school if it wasn't for him and for them. I always feel, 'I am your humble servant'. What Swamiji

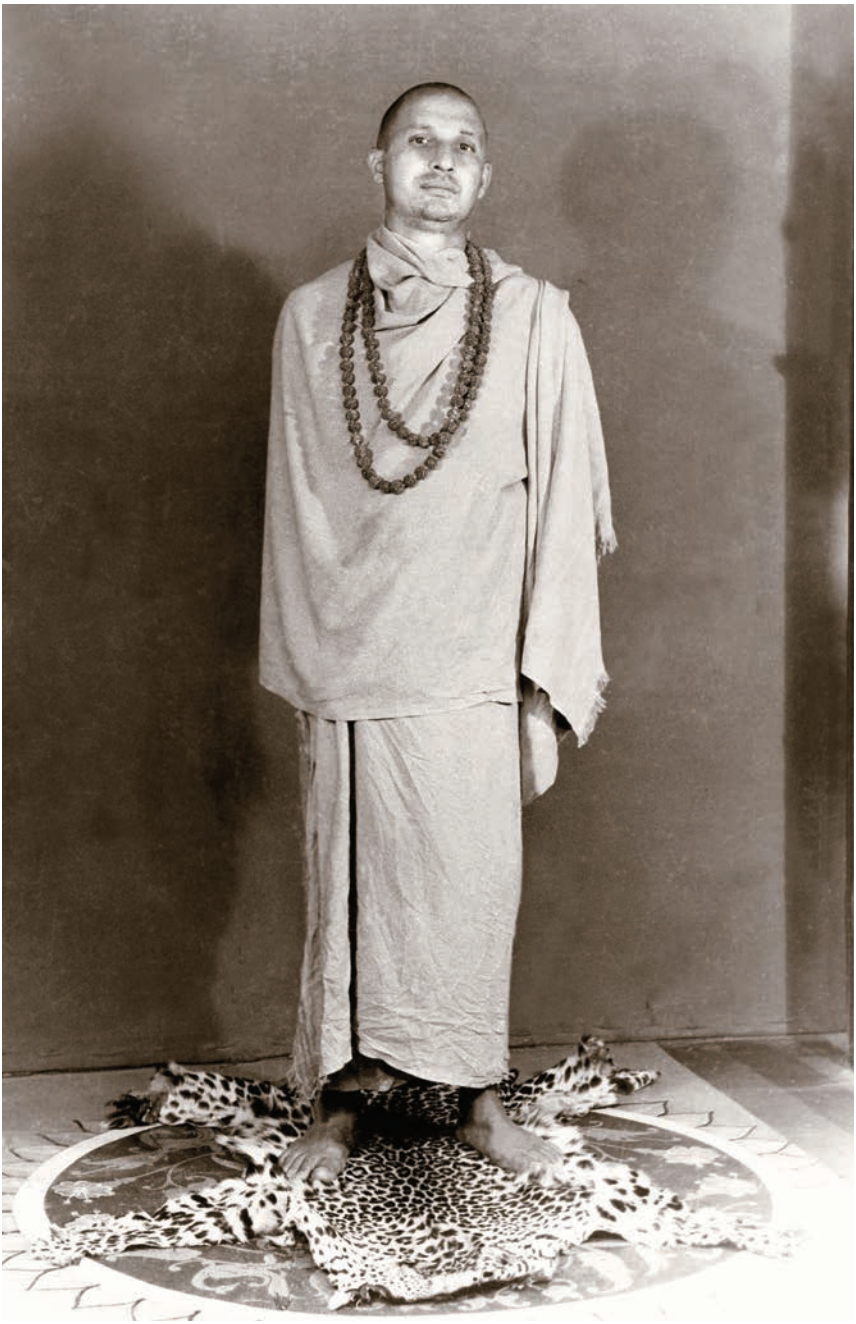

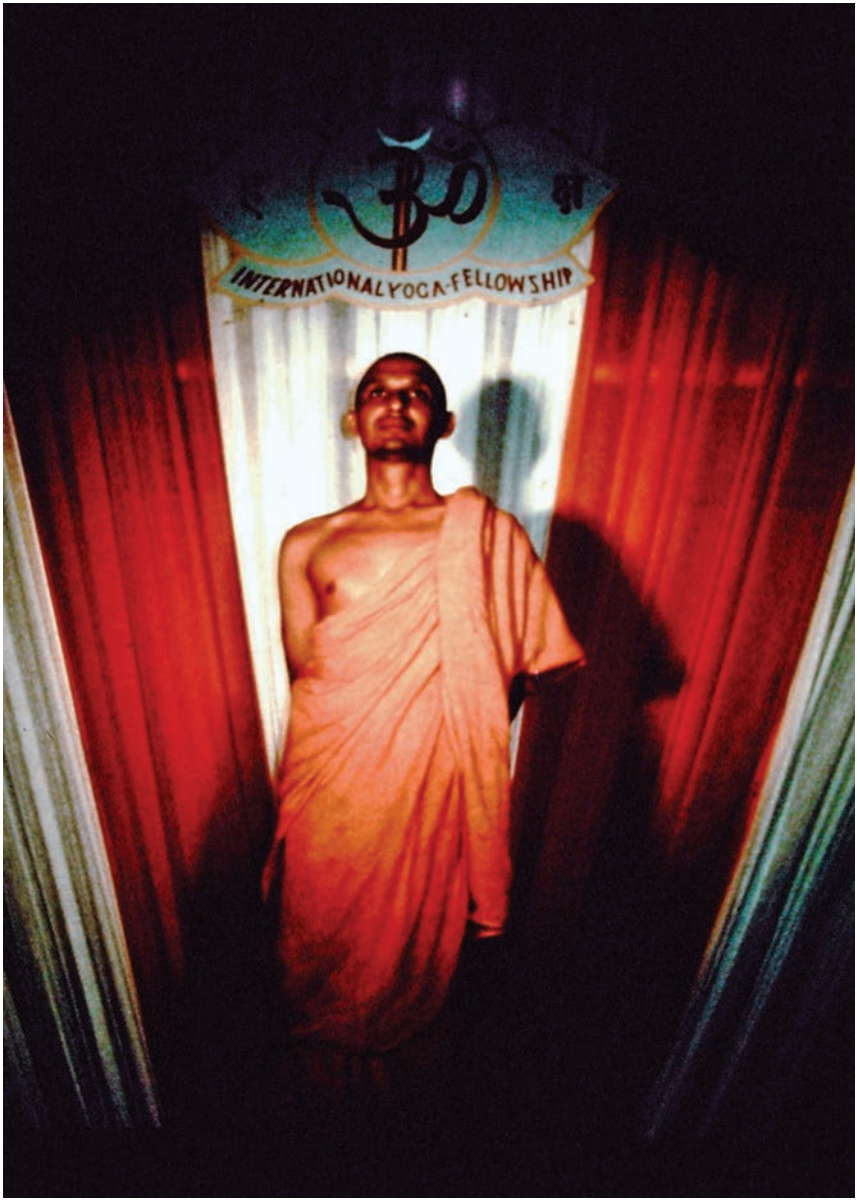
INTERNATIONAL YOGA-FELLOWSHIP

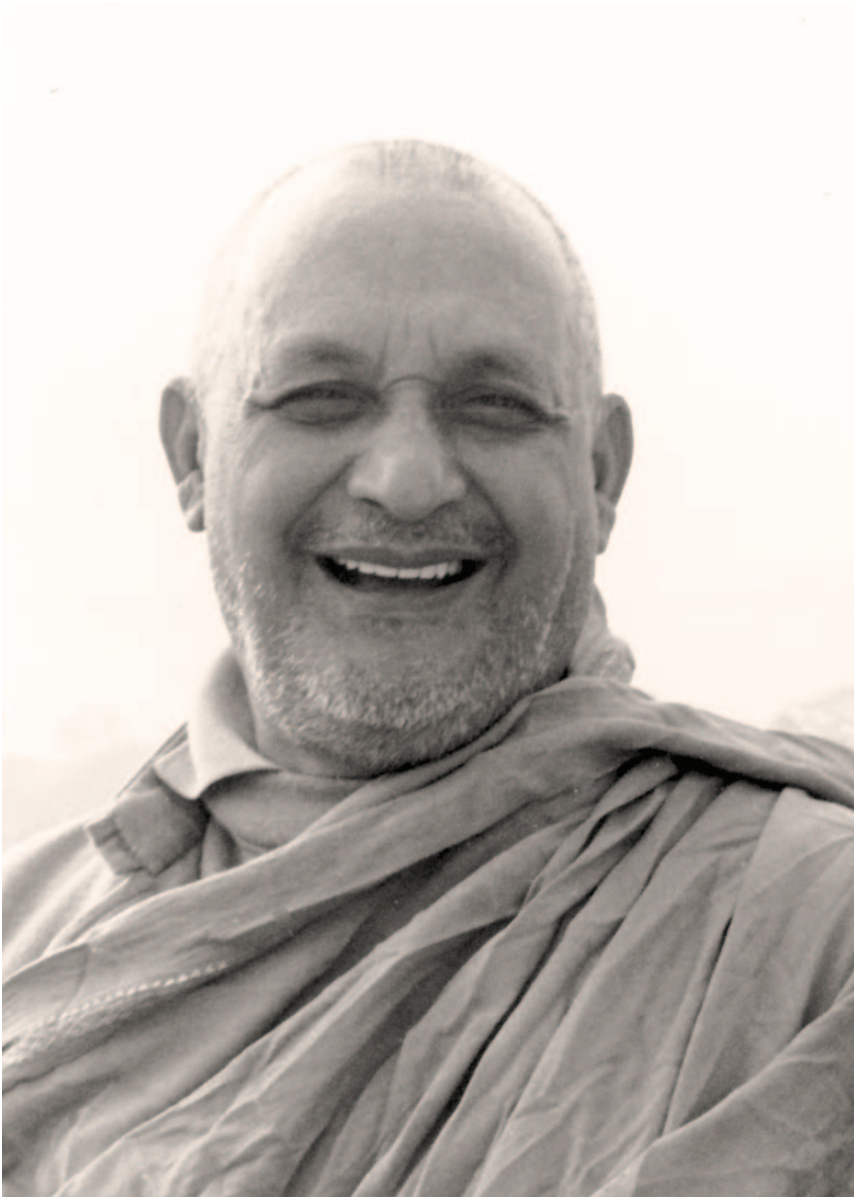

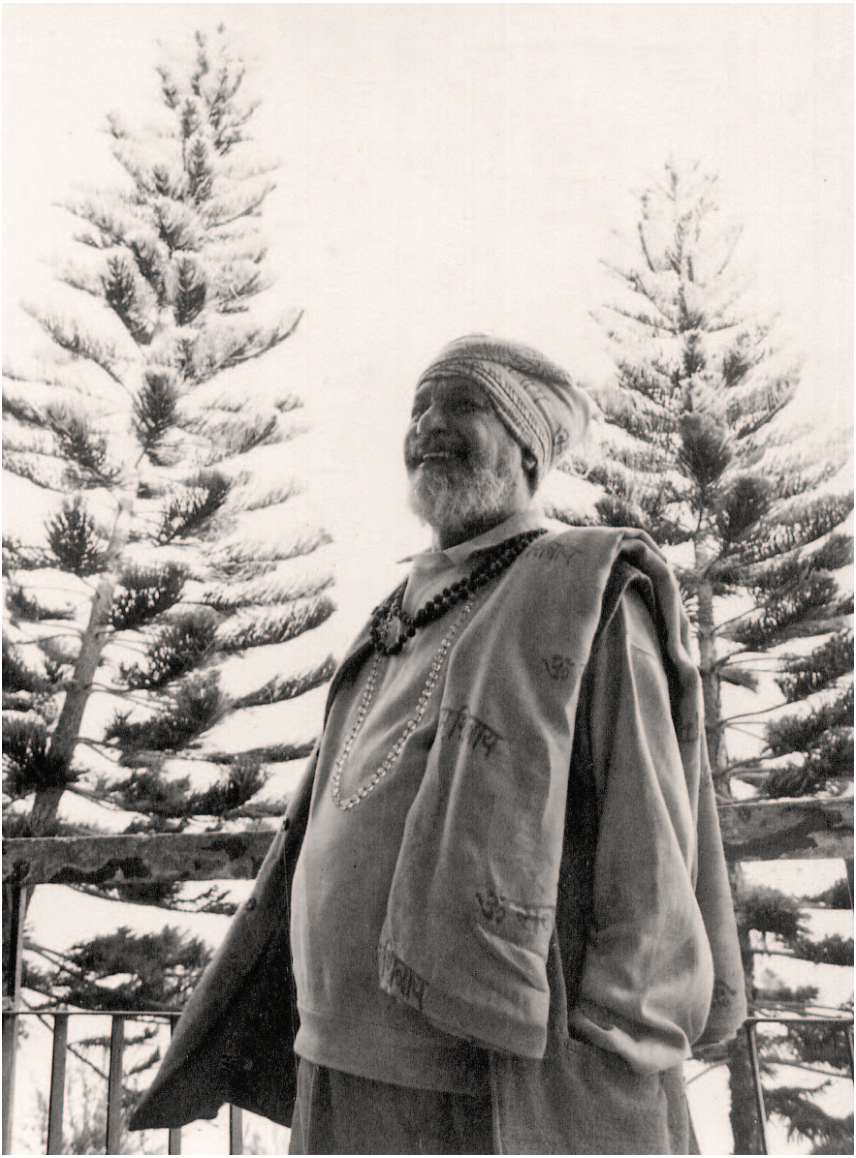

commands and what the disciples demand, that work must be done. Since the moment I met him in 1943, Swamiji has always controlled my mind.

In 1963, the foundation of the Sivananda Ashram was laid for only one purpose, to fulfil the mandate my guru had given me. Sivananda Ashram was the blueprint of what was to become Bihar School of Yoga. It was the master plan to prepare teachers of different nationalities to be experts in yoga, not just disciples. Swami Sivananda wanted all of his disciples to be able to deal with every aspect of yoga thoroughly, but what happened was that he had many disciples and no experts to teach them according to his vision of yoga for humanity. So he said to me, "Why don't you continue the work according to our plan?" I said, "Yes, if that is your wish, I will do it." The second thing he said was, "You do not have to take charge of Rishikesh Ashram; you will remain here." That's part of the reason why the yoga renaissance began in Munger.

In 1963 I prayed to my ishta devata, Lord Tryambakeshwar, "Oh Lord, please help me to carry out my guru's command. He has asked me to preach and spread yoga, and for that I need your help." And you see how generously and liberally He helped me. I toured the world like a whirlwind and bulldozed those very countries that had invaded our country with their intentions of massive conversion, with yoga. Mind you, I am using the word 'bulldozer' purposely. It was never like working with spade and pickaxe. It was a stupendous and massive feat which attained all-out success.

In 1963, I asked the Lord to help me fulfil my mission for twenty years, and in 1983 I gave it all up. I had only one goal in the beginning, which was to restore yoga to its original status and glory. This was my guru's order and through me this mission was fulfilled and yoga was universally accepted. If it is the wish of the guru, then his grace also comes down upon you. There is simply no scope for doubt in this regard. The words of the guru fructify through the disciple if his heart and lifestyle are simple and innocent.

Swami Niranjan's continuing tirtha yatra in Munger . . .

. . . When Sri Swamiji was leaving Ganga Darshan in 1988, he told me, "Niranjan, I am leaving now. I am giving you the responsibility of the yoga movement and yoga propagation. Remember that Ganga Darshan is the accomplishment of a disciple."

I asked him what he meant by 'accomplishment of a disciple'. He said, "When I came to the path of sannyasa, I wanted to live the life that the ancients have prescribed for a sannyasin. However, my guru, Swami Sivananda, gave me a direct instruction. He said, 'Propagate yoga from door to door and shore to shore.' So I set aside all my personal wishes and inclinations, and followed his command. As I have dedicated my life to my guru, I have to live as he asks me to live. He gave me a direct order, which I was able to fulfil from Munger. Therefore, my heart, my soul and my mind will remain in Munger. I may live or travel anywhere, but my dedication and commitment to my guru's mandate is reflected in Munger."

I then realized that Ganga Darshan does not come under the category of places where yoga is only a theme. It has a deeper foundation: the faith, love, surrender and commitment that Sri Swamiji had towards his guru. His guru told him, "There will come

a time in your life when you will realize that you have fulfilled your obligation to me by fulfilling the mandate given to you. Then you are free to live your life as you have wanted to, as a sannyasin."

Sri Swamiji came to this point in 1983 and handed over the responsibility to me. He spent five more years in Ganga Darshan teaching me the tricks of the trade. When he felt that my training was complete, he decided to leave, but his words have remained with me: 'Ganga Darshan symbolizes the absolute commitment of a disciple to his guru'. It is Sri Swamiji's gift to us, the culmination of his efforts, which he passed on to us.

In fact, when I retired from the responsibilities of BSY in 2008, I asked Sri Swamiji what should be my next call and if I could leave Munger. He said, "You have given up the administrative responsibilities of BSY, but you have to continue to work for the propagation of yoga. You have to continue to develop yoga. You can leave Ganga Darshan, you can leave Bihar School of Yoga, but you cannot leave Munger. Your dharma is to continue on the path of yoga and to live the inheritance which you have received from me: the inheritance of sannyasa." So that is the role I have adopted now.

मुंगेर, 1963-83

19 जनवरी 1964 को वसन्त पंचमी के शुभ दिन 'परमहंस' की दीक्षा लेने के शुभ अवसर पर मैं अपने उन समस्त शिष्यों, स्नेहियों तथा सहयोगियों को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिन्होंने मेरे परिव्राजक जीवन में मुझे आध्यात्मिक तथा यौगिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार में तन-मन-धन से सहयोग दिया है।

नये जीवन में प्रवेश के बाद यद्यपि अब मैं स्थान-स्थान का भ्रमण नहीं कर सकूँगा, परन्तु साधकगण पत्र-व्यवहार के जरिये हमेशा मुझसे पथ-प्रदर्शन एवं सहयोग प्राप्त कर सकेंगे। यह आश्रम मुंगेर में स्थापित हो रहा है। पन्द्रह दिवसीय संक्षिप्त प्रशिक्षण द्वारा योग के सम्पूर्ण अंगों की शिक्षा यहाँ दी जाएगी। इस आश्रम के प्रमुख आचार्य के रूप में आप मेरा व्यक्तिगत निर्देशन प्राप्त कर सकेंगे।

इसी दिन से श्रद्धेय गुरुदेव, समाधि-लीन, स्वामी शिवानन्द सरस्वती की पुण्य स्मृति में एक अखण्ड-दीप प्रज्वलित किया जायेगा, जो कि अनन्त काल तक जलता रहेगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप सब सारे संसार में योग के प्राचीन ज्ञान का एक नये वैज्ञानिक ढंग से प्रचार एवं प्रसार करने में आगे भी मुझे पूर्ण सहयोग देते रहेंगे।

अन्त में मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि आप सब योगमय जीवन बिताते हुए सुख, शान्ति एवं समृद्धि प्राप्त करें। ■

माँ गंगे कह दो

आज कर्ण की पुण्य भूमि पर,
स्वामी सत्यानन्द खड़े हैं।
माँ गंगे हाँ चुपके कह दो,
दोनों में से कौन बड़े हैं ॥1॥

मीर कासिम का किला पुराना,
तू अपना मुँह खोलेगा कब।
वही कर्ण दानी राजा क्या,
सत्यानन्द बन आये हैं अब ॥2॥

स्वर्ण दान वे नित करते थे,
योग दान ये भी करते हैं।
दीन सम्पन्न बनाते थे वे,
ये जन की पीड़ा हरते हैं ॥3॥

परशुराम के वे चेले थे,
ये शिवानन्द के चेले हैं।
उनके संग सेना थी भारी,
इनके संग चेले-चेले हैं ॥4॥

वे रण में अर्जुन को ढूँढे,
ये अनन्त को ढूँढ रहे हैं।
चाह उन्हें थी एक जीत की,
ये चाहों से आज झगड़ते ॥5॥

महाभारत के थे वे योद्धा,
ये जग में योगर्षि कहाये।
श्री कृष्ण के कर्म योग को,
विश्व के अर्जुन को बतलाते ॥6॥

कर्णचौरा अब गंगा दर्शन,
जग का नव इतिहास बना है।
स्वागत है इस भू पर सबका,
नहीं किसी के लिए मना है ॥7॥

माँ गंगा चुपके से कह दो,
किले की मिट्टी मुस्काती है ।
कर्ण हमारा पहुँच गया फिर,
माँ चण्डी कह हर्षाती है ॥8॥

Kshetra Sannyasa Tirtha

क्षेत्र संन्यास तीर्थ

The Royal Mendicant: 1

Lord Vishwanath of Kashi gave me his blessings. Vindhyvasini promised me. Sankat Mochan, yes, I filed an application there. Not for myself and certainly not for BSY, but for someone, somewhere, in troubled waters.

Sangam was refreshing. Pashupatinath had an air of control and discipline. Vaishnava Devi stirred me. When I took a dip at Brahma Kund at Haridwar, my whole body felt the sweetness of that drop of nectar which the Puranas speak of.

Yamuna Devi at Yamunotri did speak to me. Ganga at Gangotri inspired a dream. Perhaps an impossible dream, but if she wishes, there is nothing which I consider impossible.

Kedarnath, O Lord! where I lost myself. The time, the direction and all that is empirical. I am afraid to have that experience again. Badri Vishal, a pleasant culmination of all the beautiful experiences of life.

And finally Sivananda Ashram. Words fail to describe the experience. I did not feel the absence of Swamiji. And certainly, I told him that the ashram was a powerhouse of spiritual life.

With this, I have completed the first part of my mendicancy.

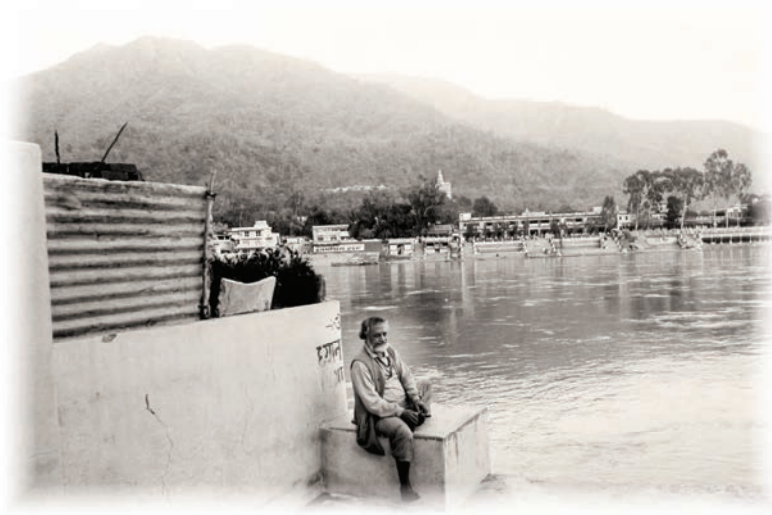

परिव्राजक प्रवर 2

मैंने वासुकीनाथ में एक छायादार वृक्ष के नीचे विश्राम किया
तो मुझे फन फैलाये हुए एक सर्प का दर्शन हुआ।
उसने मेरे गले में लिपटकर स्पष्ट निर्देश दिया– चक्रवर्ती बनो।
इसलिए मुझे तीर्थों का चक्रम् जारी रखना पड़ेगा।

मैंने कामाख्या के पुनीत आध्यात्मिक वातावरण में नौ दिनों का
नवरात्रि अनुष्ठान किया।
दशमी को मैंने देवीरूपी कन्या की पूजा की
और परम्परा के अनुसार उनका पाद-प्रक्षालन किया।
जैसे बालक भोलेपन और सरलता से माँ को पुकारता है,
वैसा ही अनुभव मुझे हुआ।
उसका प्रत्युत्तर भी मिला।

कालीघाट, कलकत्ता में
मुझे माँ काली के दर्शन हुए,
जो काल और प्रारब्ध की संहारक हैं।

जगन्नाथपुरी में पूर्ण आनन्द।
मैंने मंदिर के अहाते में
छायादार वृक्षों के नीचे विश्राम किया
और तुरंत मैं
पारलौकिक जगत् में चला गया।
मेरी आंतरिक कामना है कि
एक बार पुन: उसी प्रांगण में जाऊँ
जहाँ श्रद्धा रोम-रोम से
प्रस्फुटित होकर
एक जीवन्त अनुभव का
रूप ले लेती है।
यहाँ मैं स्वामी नित्यबोध, महात्मा और
अन्य ऑस्ट्रेलिया वासियों से मिला।
और मेरे परिव्राजन का
दूसरा चरण समाप्त हुआ। ■

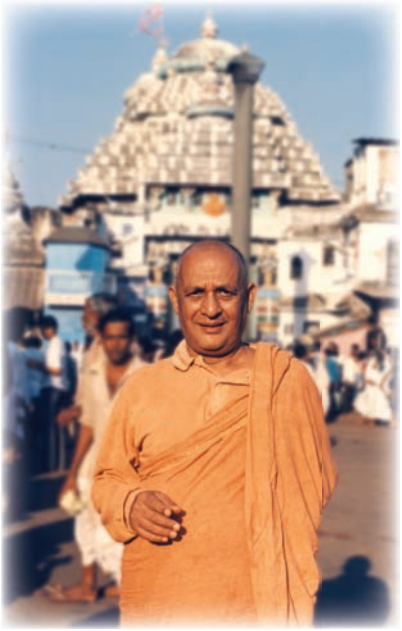

The Royal Mendicant: 3

Khajuraho, 18-20 November 1988

Khajuraho, a tribute paid to Lord Shiva by the Chandela dynasty. It was a haunting experience of the rites and rituals that were an inseparable part of the lives of our ancestors, the rishis and munis, who not only gave birth to our civilization, but also dedicated their lives to the exploration of energy and consciousness behind matter. The sublime depiction of that dramatic cosmic process of creation revealed life as a 'prayer'. Warriors, musicians, devas, apsaras, gandharvas, men, women and beasts came alive, and spoke in unison of a time when not just eroticism, as has been overly-emphasized in all depictions of the temple, but every aspect of life was considered as a means to reach God.

Chitrakoot, 21 November

It was on this very spot 'at the ghat of Chitrakoot when all the saints gathered to watch Sant Tulsidas grinding chandan paste to anoint a tilak on his ishta devata, Sri Rama, that the Lord revealed himself in person'. Here amidst the sylvan setting of Kamadgiri, I delved into the time when Sri Ramaji eternally sanctified this soil by taking refuge here. During a few reflective moments, as I rested at the foot of the mountain where thousands do parikrama, the murmuring streams, dancing trees and flowing rivers sang to me of the glorious year when Sri Ramaji with Sita and Lakshmana played his lila at Chitrakoot.

Maihar, 22 November

The long and steep climb up to the shrine of Sharada Devi, as I rested at intervals due to a footsore from my trek to Kedarnath, was reminiscent of the ascent of kundalini to sahasrara, resting and reposing at each chakra. Sharada Devi, the goddess of vidya, to whom noted musicians and artistes pay tribute, my salutations flow to you for awakening the creative energy.

Amarkantak, 3-7 December

Amarkantak, 'the forest of the immortals', vibrant with the energy of great tapasvis, rishis and munis who have practised sadhana there from time immemorial, breathed an air of tranquillity, harmony and balance. During my dip at the Narmada udgam, I felt as if my body was being caressed by the breath of Shiva from whose body she has emanated.

A bath at Kapil Dhara where the icy cold Narmada falls freely, a sip of water at the source of the Sone, a walk through the deep forest to Bhrigu Kamandal and resting at Mai ki Bagiya, I felt oneness with nature.

Every night, as my physical body rested at the ashram of the Udaseen Sampradaya, my astral self was out in the open, 'majestically walking with Shiva', body smeared with bhasma, snake coiled around the neck, trident and damaru in hand, stalking the wild forest.

Mahakaleshwar, Ujjain, 11-14 December

The eternally sanctified city of Ujjain, which was conquered with pride by Shiva, where I performed bhasma abhisheka on Mahakaleshwar, the swayambhu jyotirlinga of Lord Shiva. The ceremony lasted one and a half hours and only a few select people were present.

The rest of the day was spent in fasting and in chanting mantras before Mahakaleshwarji. The three-foot black linga encircled by Nagaraja and set with flawless perfection on a silver yoni, thronged by hundreds of devotees, silently projecting Shakti from within itself, defied all understanding and brought alive the timeless tradition of shraddha and bhakti.

Kala Bhairava, Ujjain, 14 December

You have been consuming the madira offered to you by your ardent devotees. Now, I offer you the intoxication which has led me through several incarnations, for this is all I have. And with this humble offering I seek your protection while I tread throughout the wilderness of life.

Omkareshwar, 15-16 December

This sacred Om-shaped island on the banks of Narmada Devi, where Adi Shankaracharya received sannyasa diksha from Guru Govindapada, and later performed the miracle of absorbing Narmada in his kamandal, transformed faith into a living experience. There in the cave where Shankaracharya lived, as I stood with folded hands, I heard a voice within say, "What do you seek? Ask and it shall be yours." That brought to my mind the utterances of Maitreyi and Nachiketas and in an outburst of Sanskrit, I said, "Digvijaya – no. Immortality – not possible. Prosperity – had plenty. Moksha – it is in me. I have come here merely to fulfil my promise which I made to you thirty years ago, to return when my work is over."

परिव्राजक प्रवर 4

मथुरा, गोकुल, बृन्दावन, बरसाने (1 से 11 जनवरी 1989)

मथुरा मण्डल की तीर्थ यात्रा के साथ वर्ष 1989 का आरंभ हुआ, जहाँ पर द्वापर युग में श्रीकृष्ण ने अवतार लिया एवं समस्त लीलाएँ कीं।

भगवान श्रीकृष्ण ने वराह पुराण में स्वयं कहा है कि तीनों लोकों में ब्रज अथवा मथुरा से अधिक प्रिय अन्य कोई स्थान नहीं है।

न विद्यते च पाताले नान्तरिक्षे न मानुषे।
समत्वं मथुराया हि प्रियं मम वसुन्धरे ॥ 150.8
मथुरेति च विख्यातमस्ति क्षेत्रं परं मम।
सुरम्या च सुशस्ता च जन्मभूमि: प्रिया मम ॥ 150.11

यमुनोत्री से निकली, निर्मल नीले जल वाली उन्मुक्त यमुना इस नगर से होकर बहती है, जिसके किनारे बैठकर श्रीकृष्ण की राधा के साथ की गई उन लीलाओं की विरही स्मृति पर, जिन्हें प्रसिद्ध कवियों ने बारम्बार गाया है, मैंने गहन चिन्तन किया।

ब्रज की प्रत्येक वस्तु में कृष्ण-चेतना का आनन्ददायक स्मरण होता है, चाहे गोकुल का दर्शन हो, जो कृष्ण का पहला घर था, जहाँ वे 'माखन चोर' कहलाये, या वृन्दावन, जहाँ उन्होंने कालियमर्दन किया, गोपियों के साथ रास-लीला की और 'रसिया' कहलाये, या गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा, जिसे ऊँगली पर उठाकर इन्द्र के कोप से स्वजनों की रक्षा की और इस प्रकार उन्हें 'गिरधर' का नाम मिला, या बरसाने की यात्रा, जहाँ उनकी सर्वप्रिय गोपी 'राधा' रहती थी।

श्रीकृष्ण की भूमि पर मैंने स्वामी अखण्डानन्द जी के आश्रम में 12 दिन व्यतीत किये और इस समय सम्पूर्ण भागवत की धार्मिक कहानियाँ जीवन्त हो गईं, जो हमेशा मुझे प्रेरणा देती रहेंगी। यहीं पर मुझे महान् सन्त देवराहा बाबा के दर्शन भी हुए। ■

The Royal Mendicant: 5

Tryambakeshwar, 14 July 1989

I am at Tryambakeshwar, the jyotirlinga of Lord Shiva, after twenty-six years. It was here in 1963 that the chapter of my life which led me to Munger and the propagation of yoga was first revealed to me. It was here too that I made a sankalpa or promise to return and seek further enlightenment, renouncing all I achieve or accomplish for the propagation of yoga.

This morning I went to have darshan of Lord Mrityunjaya and sought his permission to spend two months of Chaturmas here. I am alone. What shall I do here? All around me rise the Brahmagiri hills from which the Godavari descends and flows on to the eastern sea. While I meditate under the gular tree outside my kutir and await his next command, I am inspired and intoxicated by the wondrous beauty of these Shivalingam-shaped mountains on all sides.

Tryambakeshwar, 18 July

Guru Poornima vrat begins today. At midnight I was bathing in the light when a cyclonic storm started and the command was clear: "Perfect the unbroken awareness of your guru mantra with every breath and beat of your heart. That is your mission now."

So here begins the next chapter of my life. And just as I gave my whole self to the accomplishment of His previous command, I shall also plunge deep into all that is required of me to perfect my new mission. The past is dead and gone. Human as I am, I may travel back into the past and circumstances may compel me to accept associations with those with whom I had interacted before. That too is His will. But my personal endeavour will be to break away from the past and fulfil the mission given to me by Lord Mrityunjaya.

Tryambakeshwar, 8 September

A question which has been haunting my mind from time to time is answered today. Where do I fulfil my next mission? Many places were offered to me – a beautiful cave at Gangotri on the banks of the Ganga, a kutir at Kedarnath and many others, but I had reserved my decision until the direction was made clear to me. I woke up at midnight as usual. The sky was quiet, the translucent rays of Ashtami were shining through the small windows of my kutir, and I found that I was once again enveloped by a strange light. The command was clear: "Go to my burial ground, the shmashan bhoomi."

That very morning while I was boiling my tea, Swami Satyasangananda arrived all the way from Munger and the first instruction I gave her was to find the place for me. I gave her a glimpse of what I had seen and described its setting and surrounding topography. She left barely three hours after her arrival, in search of the place of my description.

Tryambakeshwar, 12 September

On this day forty-three years ago I shed all that belonged to my poorvashram, the name, the caste, the gotra and many

more things including coat and pant to don the geru robes. It was on this day, at Rishikesh by the banks of the Ganga, that my guru Swami Sivanandaji gave me paramahamsa diksha of the Dashnami sannyasa order.

A swami arrived by mid-afternoon from Munger to inform me that barely two days after her departure, Swami Satsangi had located the exact setting in Lord Shiva's shmashan bhoomi for my further mission. That evening I performed the poornahuti for the fulfilment of my prayers and the revelation of a divine place and a clear-cut path, just as BSY and Ganga Darshan had been revealed to me twenty-five years ago in the same place by the same Lord Mrityunjaya.

I now wish to make it clear to all of you associated with me in the past that I am dead and will continue to live in the shmashan bhoomi of my ishta devata until he has some other command for me. Prior to my final settling I will pay a visit to Kamakhya and worship Her in Her physical form which I had promised on Vijaya Dashami last year.

Swami Niranjan's tirtha yatra to Tryambakeshwar in 2011 . . .

. . . I spent three days in Tryambakeshwar, in quietness and isolation, and immersed myself in anusthana, dedicated to Sri Swamiji, seeking the grace of Lord Mrityunjaya, the presiding deity of Tryambakeshwar. From dawn till dusk, I sat on the same asana, in front of the same dhuni lit by Sri Swamiji in 1989, which has been burning continuously ever since.

For periods of time during the day, I would perform my anusthana and japa sitting in the shade of the gular tree that forms a large canopy outside the goshala, on the same *kattha* or platform that Sri Swamiji used to sit upon.

The experience of the goshala was something that took me back in time. I relived all the moments I had spent with Sri Swamiji during his Chaturmas at Tryambakeshwar. For the entire duration that I was conducting my anusthana, I felt as if a larger body of Sri Swamiji was seated there and I was contained inside his body, going through the same motions, the same mantras, the same aradhana. It was not I who was doing anything, but I was within the body of Sri Swamiji. He was performing everything and I was simply like a mannequin, a puppet, who had no control over its body. I was just watching everything take place, knowing that I was being guided by the eternal grace and blessings of Lord Mrityunjaya and Sri Swamiji, our beloved Gurudev.

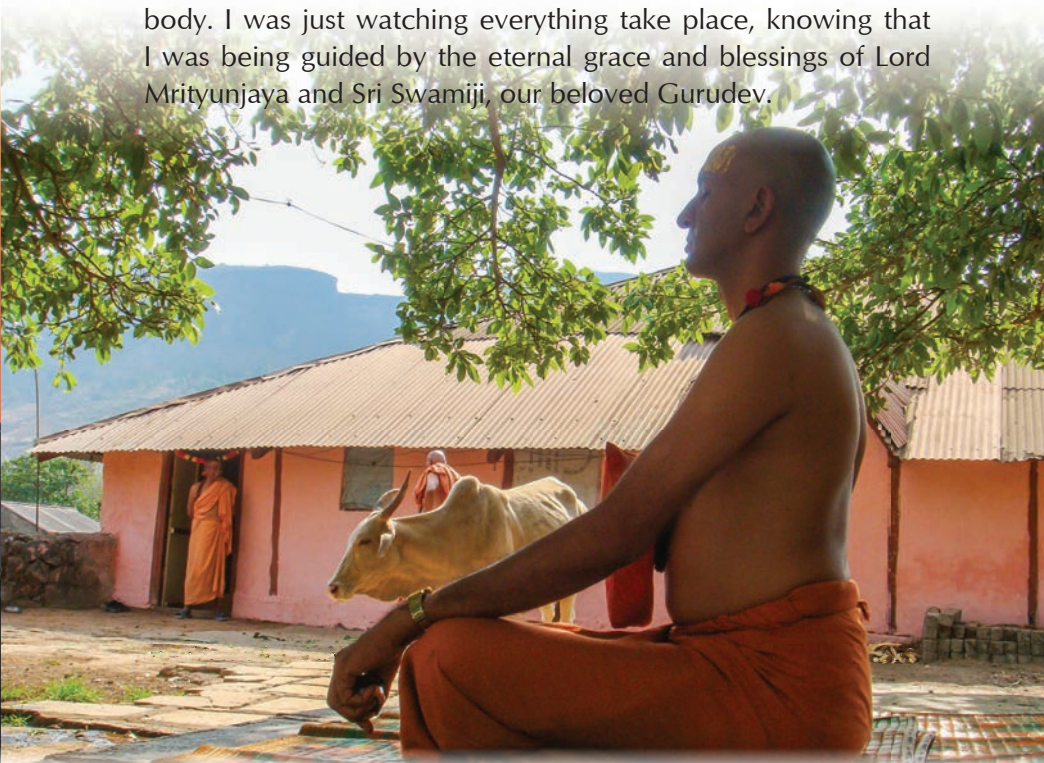

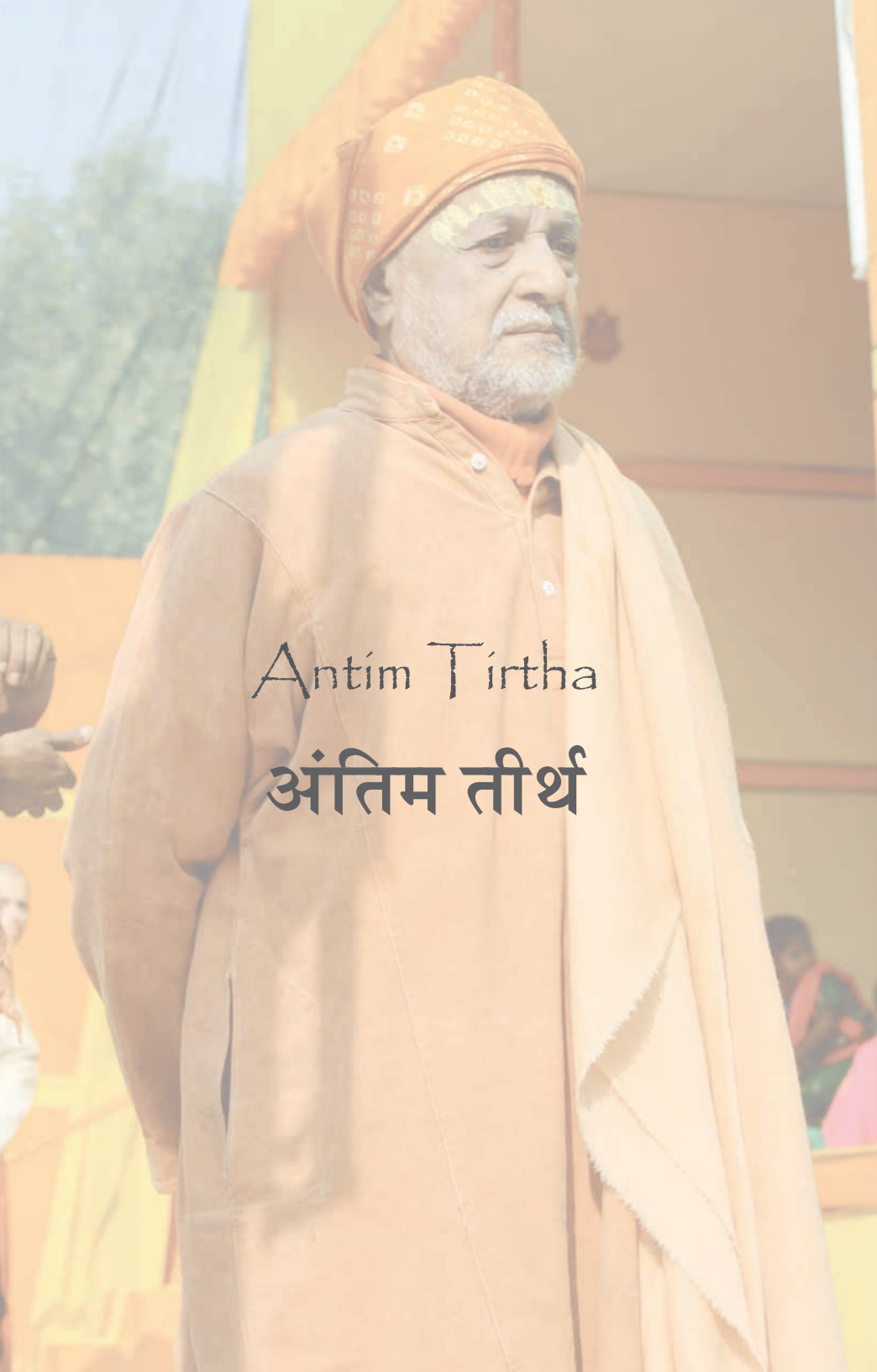

Antim Tirtha

अंतिम तीर्थ

Rikhia, 1989–2009

It is strange that I came to Rikhia, leaving all other places. Even though this place is so close to Munger, I had never thought of staying here. I am, and have always been, a man of resources. So why stay here in Rikhia? I did not choose this place. God has given me this place. After I left Munger in 1988, when I was in seclusion in Tryambakeshwar, near Nasik, I heard God's command and was shown this place very clearly. I came here and started following His instructions. Here, my eyes have opened further because this is a beautiful place, a great and powerful place. Listen to what I am telling you. Understand it plainly and in a straightforward manner. I am not talking symbolically. I have been sent here for a specific purpose. I am telling you the facts and you should understand them as facts. I heard God one day, just as you are hearing me right now.

I came to realize we are dependent on grace, after practising spiritual life, sannyasa life, for many years. I tried everything possible. I had spent more than sixty years in sadhana. There is no sadhana that I have not done at one time or another in my life, but not once did my number come up in the lottery. However, after coming to Rikhia, luck smiled upon me and I got the winning number.

I arrived here on 23rd September 1989, at twelve o'clock, midday. It was the day of the vernal equinox when everything is in perfect balance; day and night are both exactly twelve hours long. On such a day, I set foot here at exactly midday. Was that auspicious moment a coincidence? That day, I was standing over there with a few people, including some of the locals; I did not know where to put the dhuni, the sadhana fireplace. I was standing here when suddenly a twelve-foot-long serpent appeared at that spot, and it then circumambulated the entire property. Then I said, "I shall light the dhuni here." When God gives His command, you have to tune in and be able to understand. Things become so easy that you do not have to think or struggle. When it is God's will, everything is easy. When it is man's will, then you have to struggle. You can only attune to God's command when you stop thinking. God gave the command and so it happened that way.

Rikhia is a very beautiful place. I like this place so much that I have forgotten everything. I have left Munger and now I have settled down here and forgot myself, like a person who drinks too much and forgets his wife and children, and the entire world. It is five years since I came here, the sixth year will be completed this September. In order to settle down in a place, you need time. Now everything is favourable, the neighbourhood, the weather, the water, and my mind as well. This is my airport. My aircraft will fly away from here.

Swami Satsangi's continuing tirtha yatra in Rikhia . . .

. . . The basis of Rikhiapeeth is love. Rikhia floats on love, Rikhia is a bubble of love, Rikhia is a demonstration of love, Rikhia is an experiment of love and Rikhia is an experience of love. And where there is love, there is everything. Whenever you are in love, everything begins to appear so nice. You don't mind any difficulty. When you are going to meet your beloved, even the long traffic jam does not bother you because you are in a different space, you are in a different world. That which felt like noise earlier begins to sound like music, the same boring faces that you saw earlier begin to look so nice. The flowers, they begin to shine; the birds, the trees, the sun, everything begins to flow in harmony. And that is what Rikhia stands for.

The Last Journey

You have gone on a journey in your youthful days
Of seeking and wondering who you are,
And what is the meaning and purpose of all.
Journey on bravely, have no fear,
For now you are no longer alone.
You are protected by a mantle of love,
And unseen hands guide and direct you.

Though your footsteps may falter, your strength seem weak,
Be assured you will reach that goal which you seek.
Journey on bravely and if you feel tired,
Give yourself time to pause and reflect
On the glory of the sublime heights before you.
For if you get too fatigued, you may fall prey
To temptations and thoughts of return.

What have you left that demands your return?
Your days of worldly ambition are over,
Though you may not yet have fully grasped this fact.

You still feel you belong neither here nor there,
But in truth you are already with me.
You have realized the emptiness of worldly life,
Yet have not attained to other planes of existence.

You are not certain of where you belong,
But I know who you are and where your home is,
And where you will find all the things that you seek.
What is past is over and cannot be restored.
It was all a part of the journey of your soul,
And your search to find your real self.

You have begun to realize what you really are
And what the purpose of your life really is.
If you return to the world now, you will be lost
And your life will have been spent in vain.
O child, keep your eyes fixed always on the goal!
You are my child who has returned to me.
Let me see who can keep you from me now.
You are surrounded by love and by light.

जो कुछ है, सो तू ही है

हे परमहंस अवधूत,
तुम्हारे मानसरोवर रूपी,
हंस नगरी में आकर चकित हूँ।
यह नगर भक्तों से भरा है,
माँ चण्डी स्वयं विराज रही हैं।
और तुम प्रसन्न मुद्रा में
जनमानस के मध्य घूम रहे हो–
कि कोई बिना दर्शन के न रह जाये।

हे परमहंस,
बाबा के धाम में आकर,
अपने पड़ोसियों को समर्थ बनाया,
भोले का भण्डार लुटाया–
शिवानन्द मठ के नाम से
गुरु का झण्डा फहराया,
हे परमहंस तुमने कैसा दृश्य दिखाया!

हे परमहंस अवधूत
आदेश पाकर चिताभूमि में–
अपना साधना स्थल बनाया।
बाल्यावस्था में माता पार्वती ने
पंचाग्नि साधना की थी
तुमने पंचाग्नि साधना कर
जग को दिखलाया।
अब शतचण्डी यज्ञ करके
माता का सम्मान किया,
कन्या पूजन करके
नारी जाति को अभय दिया–
पूजनीय बनाया।

हे परमहंस अवधूत
तुमने यह कैसा रूप दिखाया
त्याग और वैराग्य का
अनूठा आदर्श अपनाया
चकित हो गया विशाल जनसमूह
जब तुमने अपना सब कुछ
धर्म-कर्म-सहित-साधना
स्वामी निरंजन को संभला दिया,
स्वामी निरंजन को
मेरा यही मंगल आशीष है
सदैव उसके सिर पर रहे
वरद हस्त तुम्हारा
उसका सिर सदैव तुम्हारे चरणों में झुका रहे,
तुम्हारे आदेश व चरण चिह्नों पर चलने,
निरंजन सदा तत्पर रहे।

हे जगत् पिता
तुम्हें क्या कह सकती हूँ
तुम तो महादेव से अडिग खड़े हो
तुम्हारे शरीर से आशीर्वाद की
गंगा बह रही है,
जिसे पाने सारे विश्व के लोग
तुम्हारे सामने नत-मस्तक हैं।
सबके मन के विचार व
नयनों में तुम्हीं समाये हो,
सभी ने तुमको अपना समझा, अपना पाया।

–स्वामी धर्मशक्ति सरस्वती

Yoga Publications Trust

Rikhiapeeth Satsangs
रिखियापीठ सत्संग

Sri Swami Satyananda Saraswati came to the remote village of Rikhia (Jharkhand) in 1989 after entering a new phase of spiritual life. Here he performed intense austerities, exemplifying the highest principles of the sannyasa tradition. The fruit of his sadhana was distributed to the local villagers in the form of economic, social and spiritual prosperity. Rikhiapeeth Satsangs are collections of talks given by Sri Swamiji in Rikhia.

For an order form and comprehensive publications price list, please contact:

Yoga Publications Trust, Garuda Vishnu, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India
Tel: +91-6344 222430 , Fax: +91-6344 220169

A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response to your request.

हरि ॐ

सत्य का **आवाहन** एक द्वैभाषिक, द्वैमासिक पत्रिका है जिसका सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जा रहा है। इसमें श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती एवं स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की शिक्षाओं के अतिरिक्त संन्यास पीठ के कार्यक्रमों की जानकारियाँ भी प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी योगमाया सरस्वती
सह-सम्पादक – स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती

संन्यास पीठ, द्वारा-गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, हरियाणा में मुद्रित।

© Sannyasa Peeth 2017

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं। कृपया आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

संन्यास पीठ
पादुका दर्शन,
पी.ओ. गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201,
बिहार, भारत

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कवर एवं अन्दर के रंगीन फोटो: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

• Registered with the Registrar of Newspapers, India Under No. BIHBIL/2012/44688

Sannyasa Peeth Events & Training 2018

Jan1	Akhanda Path of Hanuman Chalisa
Jan 18–26	Adhyatma Samskara Sadhana (for nationals)
July 13–21	Adhyatma Samskara Sadhana (for nationals)
Jul 24–26	Guru Poornima Satsang program (Hindi/English)
Jul 27	Guru Paduka Poojan (Hindi/English)
Jul 27–Jul 27 2019	Sannyasa Experience (for nationals)
Jul 27–Sep 25	Chaturmas Anusthana (for nationals)
Jul 27–Aug 20	Vanaprastha Sadhana Satra I
Aug 26–Sep 25	Vanaprastha Sadhana Satra II
Sep 8–12	Sri Lakshmi-Narayana Mahayajna (Hindi/English)

For more information on the above events, contact:

Sannyasa Peeth, Paduka Darshan, PO Ganga Darshan, Fort, Munger, Bihar 811201, India
Tel: +91-06344-222430, 06344-228603, Fax: +91-06344-220169
Website: www.biharyoga.net

✉ A self-addressed, stamped envelope must be sent along with enquiries to ensure a response